क़ब्रों की दुनियाँ में

क़ब्रों की दुनियाँ में

(मौलिक कहानियाँ)

श्री शम्भुनाथ सक्सेना
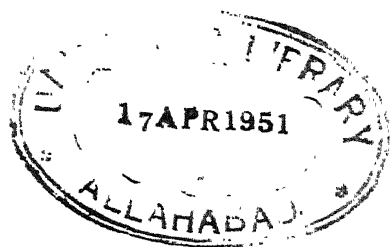
प्रथम संस्करण

मयूर-प्रकाशन
झांसी।

मूल्य
१।।।)

❋ कुछ सम्मतियां ❋

श्री शम्भुनाथ जी सक्सेना अपनी बात ओज के साथ कहते हैं, उनकी भाषा में बड़ी चुभन और सजीवता है।

वृन्दावनलाल वर्मा

श्री शम्भुनाथ जी सक्सेना एक नीरस विषय को भी अत्यन्त सरस कर देते हैं।

डा० लङ्कासुन्दरम् एम०
सलाहकार, संयुक्त सुरक्षा परिषद् (यू० एन० ओ०)

श्री शम्भुनाथ जी सक्सेना के विचारों में नवीनता और मौलिकता है और शैली में बल तथा आकर्षण है।

श्रीकृष्णदत्त पालीवाल
भूतपूर्व मन्त्री अर्थ तथा सूचना विभाग (संयुक्तप्रांत)

मैंने शम्भुनाथ जी की पुस्तकों को अत्यन्त महत्वपूर्ण, ज्ञान वर्धक और मनोरंजक पाया है।

डा० रमन सी० वसा, डी० लिट् (पैरिस)
भू० सं० जयाजी प्रताप (ग्वालियर)

श्रीयुत शम्भुनाथ जी सक्सेना हिन्दी में नवीन शैली के कथाकार हैं। अनुभवों की तीव्रता और उनका यथार्थ नियन्त्रण, एवं बारीक वर्णनों की फोटोग्राफी, आपकी शैली की वे विशेषताएं हैं जो आपको अन्य कहानीकारों से एक विशिष्ठ पद देने में समर्थ हैं।

प्रो० ओङ्कार शंकर विद्यार्थी एम० ए०
भू० सं० प्रताप (कानपुर)

पाली

'···शहर से बाहर का हिस्सा है लेकिन उसे गांव नहीं कह सकते। गांव के साथ जिस सत्य का गठबन्धन है, उसका वहां सर्वथा अभाव है और इसीलिए मैंने कहा, उसे गांव नहीं कहा जा सकता। लेकिन मेरी यहां इच्छा शहर और गांव की व्याख्या करना नहीं है।'

श्रीकान्त ने अपने दोनो हाथ पीछे ले जाकर हाथ के पंजों में पंजे मिलाए और अघाकर अंगड़ाई ली, मानो अपने सामने की लम्बी बात को पूरी करने के लिए स्वस्थ हो जाना चाहता है—शिथिलता और मनोभावों के बीच-बीच में उदय होने वाली अनिच्छा को एक बारगी ही घर के कूड़े-सा बुहार कर एक तरफ़ इकट्ठा कर देना चाहता है। उसने प्रभानाथ की तरफ़ संकेत करते हुए कहा—

'मि० प्रभानाथ, हमारी भावनाएं और हमारे कर्म सभी अनिश्चित हैं। अभी-अभी सामने आई परिस्थितियों से प्रेरणा पा हम क्या कर बैठेंगे और क्या नहीं, इसे सिवा सिरजनहार के कौन जानता है ? जिस घटना का मैं तुमसे ज़िक्र करने जारहा हूं, उसका सूत्र कल भी मेरे लिए ढूँढ़ना अनिश्चित

रहा है और आज भी—सही तो यह—मैं परिस्थितियों के बीच में यही न समझ सका, ऐसा सब क्यों हो गया? मेरा विवेक मुझसे कहता है—किसी मूर्ति को जन्म देने के पहले मूर्तिकार के सामने भी एक कल्पना रहती है—एक चित्र रहता है और उस चित्र के पीछे मनके सत्य की एक ठोस भावना रहती है। लेकिन तू तो निरा अकाल्पनिक ही रहा है और आज जो एक बार तेरे जीवन में प्रतिबिम्ब बनकर आया उसकी छाया को पकड़ने के लिए पागलों-सा इधर और उधर दौड़ा फिरता है।'

मि० प्रभानाथ ने जेब से रूमाल निकाल कर आनन पर दीप्त ओस-कण से श्रम-बिन्दुओं को पोंछा और कहा—

'भाई श्रीकान्त, मेरा आपका परिचय अभी चन्द घण्टों का है। लेकिन इन चन्द घण्टों में ही मैंने महसूस किया है कि आपके हृदय में वेदना ही वेदना भरी है—भावना इस अप्रत्याशित वेदना से प्रभावित हुए बिना नहीं रहती। और इसीलिए मेरी समवेदना आपके साथ है।'

श्रीकान्त मुस्कराया, जैसे दिन भर धूप से कुम्हलाई पौद में सन्ध्या समय जीवन-सा आ गया हो। लेकिन दूसरे ही क्षण उसकी मुद्रा कठोर पड़ गई। उसने अपने नेत्र प्रभानाथ के चेहरे पर गड़ा दिए—

'धन्यवाद मि० प्रभानाथ! लेकिन मुझे दुःख है कि आपने मुझे समझने की चेष्टा नहीं की। आप समवेदना की बात करते हैं और अपने को ही धोखा देते हैं। जो यह कहता है कि उसकी दूसरे की वेदना के साथ समवेदना है—वह ग़लत है, वह या तो अपने आपको धोखा देता है या फिर सामने वालों को धोखा देने की चेष्टा करता है। हम सब अपने लिए हैं—अपने लिए जीते हैं और अपने लिए मरते हैं। अपने स्वार्थ पोषण के लिए हम समवेदनाशील बनते हैं—लेकिन हमारे एक दूसरे से सम्बन्ध 'अर्थ' से सम्बन्धित हैं।'

कहते-कहते यकायक उसकी आकृति पर उभरी कठोरता तिरोहित हो गई। उसने अपने को सम्भालते हुए कहा—

'लेकिन, मेरे इस कटु व्यवहार के लिए मुझे क्षमा करना भाई प्रभानाथ, परिस्थितियों ने और जीवन की भयानक असफलता ने मुझे अभद्र बना दिया है। जिस समय भावना प्रबल होती है तो विवेक हाथ से जाता रहता—मैं विवश हो जाता हूं।'

श्रीकान्त कहते-कहते शान्त हो गया। प्रभानाथ जो श्रीकान्त के इस परिवर्तन से साबित हो गया था, द्रवित हो उठा। उसने बर्थ पर और सरकते हुए कहा—

'भाई श्रीकान्त, तुम जो कुछ कहना चाहते हो—कहो। मैंने तुम्हारी न किसी बात का बुरा माना और न मानूँगा।'

श्रीकान्त ने कहा—

'अभी-अभी मैंने जिस जगह की बात कही है—घटना वहीं की है। हमारे जीवन की घटनाएं सभी एक-सी नहीं होतीं, उनका भी वर्गीकरण है। प्रथम श्रेणी की घटना वही है जिसकी जीवन-पटल पर अमिट छाप अङ्कित हो जाए, जिसका आदि तो हो लेकिन अन्त नहीं, दूसरी वह जो हमारे समीपवर्ती मित्र या नातेदार के जीवन की प्रथम श्रेणी की घटना हो और हम चूंकि उससे किसी न किसी रूप में 'अर्थ' से बँधे हैं, इस कारण उस घटना का प्रभाव हमारे ऊपर भी पड़ता रह[illegible]—वह हैं जिन्हें हम नित्य अपनी आंखों देखते हैं और [illegible] सहानुभूति के चलने-फिरते दो अश्रु-कण बहा कर भूल जाते हैं।

'लेकिन मैंने, मि० प्रभानाथ, अभी कहा, मेरे जीवन में जिस घटना ने आमाशय में शिशु-सा बीजारोपण किया वह तो नित्य जीवन [illegible]पाती गई, आज ऊपर से वह ईजिप्ट के पिरामिड या इन्द्रप्रस्थ-सी ध्वस्त अवश्य हो

गई है, लेकिन घटना का अस्तित्व मुझमें सिक्त हो गया है और उसकी बाहरी आकृति को ही मैं आज ढूंढ़ता फिरता हूं। भाई, यदि आज मैं भाग्य पर विश्वास कर सका होता, तो जो अपरिमित कष्ट, मानापमान और दर-दरकी ठोकरें मुझे खाना पड़ रही हैं, केवल भाग्य का लेखा, या विधाता के खेल में अन्त पा गई होतीं। लेकिन मैं बुद्धिवादी हूँ और बुद्धि केवल कर्म की ही प्रेरणा देती है और जैसा कि आज आप मुझे सफ़र करते देख रहे हैं, एक आशा-दीप अपने हृदय में सजाए बराबर साल भर से घूम रहा हूँ। कभी-कभी निराशा करवट ले जागरूक हो उठती है, तो जीवन भार बन जाता है—अपनी आशा खोखली दिखने लगती है, हृत्पिंड घड़ी के पेण्डोलम-सा हिलने लगता है—अपना कर्म और विवेक हास्यास्पद दिखने लगता है। लेकिन......

लेकिन पाली के पुनर्मिलन की आशा से निराशा के यह शत-शत बन्धन ढीले पड़ जाते हैं—कल्पना उर्वरा हो हृदय के भूमि-भाग को सावन की रिमझिम-सी निसृत हो सींच देती है—अवयव अतिशय हर्ष से मृगछौने-से, स्फूर्ति से भर जाते हैं। और मैं एक विश्वास के सहारे आगे बढ़ जाता हूं—भाई प्रभानाथ, यही मेरे हृदय का मनोविश्लेषण है—यही मेरे जीवन की गति है।

'जीवन की गति !'

श्रीकान्त अपने से ही मुस्कराया—

'नहीं···नहीं मेरे जीवन की गति पाली है। पाली—'

और वह कहते कहते खोया-सा सामने के शून्य में देखने लगा उसने फिर एक निश्वास भरी—

'पाली।'

प्रभानाथ ने देखा कि उसके पास बैठा श्रीकान्त का व्यक्ति यथार्थ से अधिक भावना में डूबता चला जा रहा है। उसने स्नेह से श्रीकान्त का हाथ दबाते हुए कहा—

'मि० श्रीकान्त, जिस पाली का अभी तुमने जिक्र किया, क्या उसी से तुम्हारी प्रथम श्रेणी की घटना का सम्बन्ध है?'

बात स्पष्ट थी कि जो कुछ प्रभानाथ ने कहा था वह केवल अचेतन्य श्रीकान्त को उसकी वर्तमान भावुकता से पृथ्वी पर लाने के लिए कहा था। और उसमें उसे सफलता मिली। श्रीकान्त अपने बांयें हाथ की दो अंगुलियों को अपनी दोनों आंखों के पास ले गया और उनको पलकों पर फेर कर स्वस्थ हो गया—प्रकृतिस्थ होकर उसने कहा—

'शहर के बाहर के हिस्से में आज से डेढ़ साल पहले कुछ खाना-बदोशों ने अपने डेरे डाल रखे थे। दिन भर यह शहर में भीख मांगते थे पुतली का खेल करते थे, तरह-तरह के मनोरंजनों की रचना कर शहर की जनता का मन बहलाते थे और आजीविकाके साधन जुटा कर शामको उस शहर के बाहर के निर्जन, नीरव प्रदेश में लौट आते थे। खानाबदोशों के इस जिरगे में ही पाली थी।

एक दिन सुबह जैसे ही मैं टहल कर लौट रहा था, कि शहर के सिंह-द्वार के पास मुझे एक बुढ़िया खड़ी मिली—उसके बाल भेड़ की ऊन से भूरे थे—उसके आगे के दो दांत हाथी के दातों से चमक रहे थे और वह अत्यन्त निर्बल दीख पड़ती थी। जैसे ही मैं उस डुकरिया के पास से गुजरा कि बुढ़िया ने हाथ आगे पसारते हुए भिक्षा मांगी—

'ऐ दाताओं के दाता कुछ देता जा।'

मैंने अपनी जेब से एक चवन्नी निकाली और कहा—

'भाई मेरे पास पैसे नहीं बँधी चवन्नी है।'

बुढ़िया ने अत्यन्त वेदना भरे स्वर में कहा—

'भगवान तुम्हारा भला करे दाता, पैसे मैं चवन्नी के उस दुकान से ले कर दिए देती हूं। मैंने चवन्नी निकाल कर उसके हाथ पर टपका दी। लेकिन प्रभानाथ, उस समय मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जबकि बुढ़िया चवन्नी पाकर चौकड़ी भरकर भाग उठी। यह पाली थी और यह स्वांग भर कर भिक्षा मांगना भी उसकी एक कला थी। मि० प्रभानाथ, आप नित्य ही अपने जीवन में सड़क पर मानव होकर कीड़ों की तरह किटबिल किटबिल करते भिखारियों के रूप में देखते हैं जिनके बदन से कड़ी दुर्गन्ध उड़ा करती है—जो अपाहिज और अङ्ग-भ्रष्ट शरीर को लिए लोगों की सहानुभूति उभार कर उनकी दया—उनकी कृपा के हाथों अपना जीवन अर्पित कर देते हैं। लेकिन मैं कहता हूँ, वे दया या कृपा के पात्र नहीं हैं। हमारी सहानुभूति उनके समाज को बढ़ाती है। हमारी दया के सहारे उन्हें गलत प्रोत्साहन मिलता है - हमारी दी हुई भिक्षा उन्हें गुलामी सिखाती है। और यही कारण है कि कुछ तन से स्वस्थ लेकिन मन से निकम्मे व्यक्तियों ने इसे पेशे के रूप में इख्तियार कर रखा है - आप सही मानिए, यह भिखारी और इनकी भिक्षावृत्ति हमारे युग का सबसे बड़ा अभिशाप है। आप जहां उन्हें भिक्षा देते हैं वहां उनके योग्य काम दीजिए, उन्हें पंगु न बनाकर उनकी भावना को कर्म से सींचिए।

खैर, उस दिन पाली मुझे चकमा देकर ऐसी गायब हुई कि दिखलाई ही नहीं दी। क़रीब एक सप्ताह बाद मैं फिर घूम कर उधर से गुज़र रहा था कि मैंने देखा खानाबदोशों के डेरे के पास के शहतूत के पेड़ के नीचे बैठी एक युवती हाथ से ज़मीन में कुछ रेखाएं बना और मिटा रही है। मैं आगे बढ़ा ही था कि पीछे से आवाज़ सुनी—

'बाबू—ऐ मेरे दाता चवन्नी के बाक़ी पैसे लिए जा।'

मैंने पलट कर देखा—युवती मेरी ओर देख कर हँस रही है और हाथ से संकेत करके बुला रही है—वह पाली थी। पाली की उम्र अधिक नहीं थी। उस दिन की भिखारिन बुढ़िया और पाली में ज़मीन आसमान का अन्तर था। पाली की बड़ी बड़ी आंखों में मदिरा थी जिनकी मादकता उसकी एक दृष्टिक्षेप में 'जाम' से अधिक भरी आसव-सी छलक पड़ती थी। अपरिमित चपलता ने उसे उन फटे पुराने कपड़ों में भी कामिनी बना रखा था। मैंने पाली की ओर देखा और वह बराबर कल-कल निनाद करते स्रोत-सी हँसती चली जा रही थी। मैं उसके पास चला गया। मेरे उसके पास पहुंचते ही उसकी हँसी रुक गई। मैंने कहा—

'तुमने उस दिन धोखा क्यों दिया?'

पाली मेरी ओर अवाक्य देखते रह गई। मुझे लगा जैसे वह मेरी बात को समझ नहीं पाई। जिसे वह अपनी जीविका—अर्जन का एक साधन समझती है, वह क्या जाने उसमें धोखा कहां और कैसा है। मैंने फिर कहा—

'देखो इस तरह पैसा कमाना बुरा होता है।'

पाली इस समय भी एकटक मेरी तरफ़ देख रही थी। मैंने पूछा—

'तुम्हारा नाम क्या है?'

उसने अपनी आंखें नीची करके कहा—

'बाबू जी, मुझे पाली कहते हैं।'

फिर कुछ देर रुक कर बोली—

'बाबूजी इस तरह पैसा लेना क्यों बुरा है?'

मैंने बात को विस्तार देकर कहा—

'पाली भीख मांगना ही बुरा है—तुम नौकरी करो।'

पाली मेरी बात सुनकर फिर खिलखिला कर हँस पड़ी—

'मैं नौकरी करूँ ! अरे बाबू जी आप भी खूब...' और हँसे चले जा रही थी। मैंने चलने का उपक्रम किया कि उसने फिर कहा—

'आप नाराज़ हो गए बाबूजी ! लेकिन मेरी भी तो सुनिए ?' मैं खड़ा हो गया। उसने कहा—

'सरकार, आप माई-बाप हैं, अमीर हैं, हमारे अन्नदाता हैं। हम खानाबदोशों का कहीं कोई ठीक है ! आज यहां डेरे लगे हुए हैं, तो कल हमारा कारवां किसी दूसरे शहर में होगा। हम भला क्या नौकरी करेंगे सरकार, हम एक जगह टिकने और नौकरी करने के लिए बनाए ही नहीं गए हैं।

कहते-कहते पाली भावना में डूब गई। मैंने अपनी छड़ी से ज़मीन की मिट्टी कुरेदते हुए कहा—

'लेकिन यह भी कोई जीवन है। ज़िन्दगी भर भिक्षा मांगो और ग़ुलामी के बोझ को अपने सिर पर लादे चलो।'

मैं इतना कह कर आगे बढ़ गया। लेकिन उस दिन से पाली नित्य ही मुझे घूमने के समय मिलने लगी। एक दिन बोली—

'बाबूजी भीख मांगना आपको बुरा लगता है ?'

मैंने हँसते हुऐ कहा—

'मेरे अच्छे और बुरे से क्या पाली ?'

पाली ने अपनी चञ्चल आंखें नचाते हुए अपने फटे दुपट्टे का खूँट दांत से काटते हुए कहा—

'नहीं बाबूजी आपको बतलाना पड़ेगा।'

मैंने कहा—

'पाली जिस तरह की तुम्हारी स्थिर ज़िन्दगी है, उसमें पेट भरने के लिए और साधन ही क्या हो सकता है।'

पाली ने फिर ज़िद्द की— .

'नहीं बाबू जी आप यह बतलाइए, भीख मांगना आपको बुरा लगता है ?'

मैंने कहा—

'हां पाली, यह भीख मांगना बड़ा बुरा है। चौबीसों घंटे दूसरों के आगे हाथ पसारना—दूसरों से अपना पेट भरने के लिए भिक्षा मांगना, यह अपना अपमान है—अपने श्रम का मखौल है।

पाली ने स्थिर होकर कहा—

'बाबूजी, अब मैं कभी भीख न मांगूँगी।'

मैं हँस दिया। पाली ने अपने स्वर में दृढ़ता लाते हुए कहा—

'सच कहती हूँ बाबूजी, अब कभी भीख नहीं मांगूंगी।'

उसके दूसरे दिन मैंने देखा पाली शहतूत के पेड़ के नीचे बैठी पीली पीली खजूरकी पत्तियों को अमेठ-अमेठ कर गजरे बना रही है मैंने कहा—

'इस सब का क्या करोगी पाली ?'

पाली ने अपनी पुतलियों को 'सम' पर लाते हुए कहा—

'आप इतना भी नहीं जानते ? मैं आज इन्हें ले जाकर बाज़ार में बेचूंगी।'

दूसरे दिन पाली ने बतलाया कि उसने उन खजूर की पीली पत्तियों के गजरों से एक रुपया कमाया। उसने उस दिन कहा—

भीख से मेहनत सरल है बाबूजी। कल आराम से एक रुपया कमा लाई।'

दिन बीतते गए। जिस दिन टहलने में नागा हो जाता पाली मेरा इन्तज़ार करती रहती। पाली ने एक दिन कहा—

'बाबूजी जिस दिन आप टहलने नहीं आते, उस दिन मन काम में नहीं लगता। कल दुपहरिया तक मैं इस पेड़ के नीचे बैठी-बैठी आपकी बाट जोहती रही।'

मैंने कहा—

'पाली तुम बड़ी भोली हो।'

पाली ने तुनक कर कहा—

'हूँ, बड़ी भोली हूँ। अभी उस दिन जब आपकी चवन्नी ले भागी थी, वह भोलापन ही तो था।'

फिर थोड़ी देर रुककर आपसे आप बोली—

'एक विनती मेरी आपसे है।'

मैंने पूछा—

'क्या ?'

उसने अपने फटे दुपट्टे के खूंट से दस रुपए का नोट खोल कर मेरे हाथ में दिया—

'इसका बाबूजी आप अपनी पसन्द का दुपट्टा ला दीजिए।'

मैंने नोट लौटाते हुए कहा—

'पाली इसे तुम अपने पास रखो। मैं कल तुम्हें दुपट्टा ला दूँगा।'

पाली ने, लेकिन मेरे लाख मना करने पर भी रुपए वापस नहीं लिए। मुझे विवश होकर उसके ही रुपयों से दुपट्टा लाना पड़ा।

आप सही मानिए मि० प्रभानाथ, न जाने क्यों मैं पाली के निकट आता चला जाता था, यह मैं स्वयं नहीं जानता ? लेकिन पाली मेरे लिए चुम्बक बनती चली जा रही थी और मैं अपने एकान्त-चिन्तन में महसूस करता था कि मैं उसकी तरफ खिंचता चला जा रहा हूँ। एक दिन मैं टहल कर लौटा कि देखता क्या हूं पाली चुस्त मुहरी की शल्वार, रेशमी कुर्ता

और मेरी पसन्द का दुपट्टा ओढ़े, उसी शहतूत के पेड़ से टिकी खड़ी है। मैंने मीठी चुटकी लेते हुए उससे कहा—

'क्या ससुराल जा रही हो पाली ?'

पाली ने नाखून से नाखून पर रेखाएं बनाते हुए कहा—

'आप तो गाली दे रहे हैं बाबूजी।'

जिस समय उसने अपने नेत्र ऊपर उठाए उनमें मौन सन्देश था—एक गहरी कल्पना थी—कुछ ऐसा भाव था कि मैंने उसे खींचकर अपने हृदय से लगा लिया। पाली ने विरोध नहीं किया। मैंने कहा—

'सचमुच पाली आज तुम बहुत सुन्दर लग रही हो।'

पाली की आंखें खुशी से नाच रही थीं—उसकी कल्पना आकाश के सुदूरवर्ती देश में परिभ्रमण करने वाले श्वेत बकुल-दल सी गगन-विहार कर रही थी। मैंने उत्साह से—स्नेह से—आकर्षण से कहा—

'पाली!'

पाली ने वक्ष से सिर हटाते हुए कहा—

'बाबूजी!'

उस दिन की उस आकस्मिक घटना के बाद पाली मेरे जीवन के बिलकुल निकट आ गई। पाली मुझे मेरे जीवन की आवश्यकता महसूस होने लगी। रोज़ हम एक दूसरे से मिलते थे—हँसते थे—बातचीत करते थे—खेलते थे। उस नीरव स्थान की छोटी-छोटी पहाड़ियों के टीलों पर बैठ कर मैं पाली से बातें करता था और वह एक टक मेरी ओर निहारती, ध्यान से बातें सुनती रहती थी। पाली मेरे जीवन का एक स्वर बनकर आई थी, जिसके स्वर में मैं आत्मविभोर हो गया था—मैं खो गया था।

फाल्गुन का महीना था। मुझे आरम्भ में हल्का-सा बुखार आया और बाद को स्थिति गिरते-गिरते 'टायफायड' हो गया। दस दिन से घर से निकलना बन्द था। चौबीसों घंटे अपनी चारपाई पर पड़ा रहता

था। पाली की याद मुझे बुरी तरह सताती थी। लेकिन जिस समाज में मैं पला था—जिस उच्च अर्थिक-स्तर के वातावरण में मेरी शिक्षा हुई थी और जिस संस्कृति की मेरी मनोवृत्ति पर छाप अङ्कित हो गई थी, इनने मुझे पाली के विषय में एक शब्द भी बोलने से मजबूर कर दिया था। भाई प्रभानाथ, आज की परिस्थिति में मैं सोचता हूँ कि यह आर्थिक वर्गीकरण जिसके आधार पर हमारे समाज और राजनीति की आधार-शिलाएं टिकी हुई हैं, कब समूल धरातल में धसक कर लोप हो जायेंगी। आज हमारा धर्म, हमारी संस्कृति, हमारे सोचने को गति सभी दूषित हो गई हैं। ऐसा लगता है कि यह ऊँच-नीच और हमारे धर्म की व्यवस्था में अब कहीं ऐसा जबरदस्त विस्फोट होने वाला है जिसके भग्नावशेष के नीचे हमारी कल की और आज की परम्परायें दब जायेंगी—नष्ट हो जायेंगी। मैं आपसे सही कहता हूं, आगे आने वाली पीढ़ी इन आवश्यक बोझों को और अधिक नहीं ढोयेगी।

पाली से मैं प्रेम करता था—पाली मेरे जीवन की आवश्यकता थी लेकिन इस सत्य को मैं न तो किसी से कह सका और न इस सत्य की अपने अन्दर वाले व्यक्ति के सामने अवहेलना कर सका। किन्तु इससे क्या ? इसमें दोष मेरा है—दोष उस मनोवृत्ति का है जिसका पोषण समाज के सकरे दायरे में हुआ। एक दिन मेरे नौकर ने मेरी तबियत अच्छी देखकर कहा—

छुटका भय्या, जब से तुम बीमार पड़े हो रोज एक लड़की बंगले पर आकर तुमसे मिलने को हठ करती थी। गए मङ्गल को बड़ी उदास होकर बोली—

'बाबा, एक बार उनसे कह दो कि पाली मिलने आई है लेकिन उस दिन मालकिन और बाबूजी तुम्हारे पास थे मैं न कह पाया।'

मैंने उत्सुक होकर पूछा—

'बल्देव दादा और कुछ कहती थी वह ।'

'छुटका भय्या, बस उसके बाद आखिरी बार वह शुक्रवार को आई थी और एक कागज़ का टुकड़ा तुम्हारे लिए दे गई ।'

बल्देव ने पालो का लिखा कागज़ का टुकड़ा मुझे दे दिया। पाली का काफ़िला कूच करने वाला था, इसकी ही सूचना पाली ने दी थी। लिखा था—

'मेरे सरकार, आप बड़े आदमी हैं। हमारी पहुंच आप तक नहीं हो सकती। बराबर एक महीने तक आपके बंगले पर चक्कर लगाती रही हूँ, कि एक बार आपको देख भर लूं। आपकी बीमारी ने मुझे पागल बना दिया है। लेकिन मैं अपना दुखड़ा किसके सामने रोऊं। मन मसोस कर रह जाती हूँ। लेकिन आप बड़े हैं। मेरी आवाज़ बंगले की चहार दीवारी को चीर कर आपके पास नहीं पहुंच सकती। मैं जा रही हूँ—न जाने अब कभी ज़िन्दगी में आपसे मिल भी सकूँ या नहीं। लेकिन जो चीज़ आपको पसन्द नहीं है उसे मैं कभी नहीं करूंगी, यानी भीख कभी नहीं मांगूगी। आपकी याद और शहतूत की साया कभी मेरे ख्याल से दूर न होगी—अलविदा।'

मि० प्रमानाथ, इस घटना के बाद मेरा स्वभाव बदल गया—मैं बदल गया—मेरा सामने की चीजों को देखने का दृष्टिकोण बदल गया—मेरा युग, एक पूरी करवट लेकर परिवर्तन का संदेश मुझे दे गया। उसके बाद मैंने शहर के बाहर उस स्थान को जाकर देखा—डेरों के निशान, बकरियों की मेगनियां, अधजली लकड़ियां और राख के ढेर तब भी वहां मौजूद थे लेकिन काफिला वहां न था—प्रकृति में फिर से मृत्यु-सी नीरवता भर गई थी।

उस समय से ही मैं पाली को ढूंढ़ता फिरता हूँ। मैं बराबर चक्कर लगा रहा हूं और मुझे विश्वास है कि मैं पाली को ढूंढ़ निकालूंगा।'

विद्युत–सी तेज गति से दौड़ती पेशावर–एक्सप्रेस सहसा सि···स···सिच करके रुक गई। श्रीकान्त पागलों–सा अपने सेकिन्ड क्लास कम्पार्टमेण्ट की चेन खींच रहा था। जैसे ही ट्रेन रुकी वह अपनी अटेची लेकर नीचे कूदने के लिए तैयार हुआ। मि० प्रभानाथ ने कहा—

'अरे यह क्या कर रहे हो श्रीकान्त ?'

श्रीकान्त उस समय मुस्करा रहा था—

देखते नहीं हो, वह सामने के मैदान में खानाबदोशों के तम्बू।'

सामने की खिड़की में एक युवती खड़ी हुई है। जिस कमरे में नितीन बैठा हुआ है वहां से सिर्फ उसे युवती का ऊपरी भाग तक ही दीखता है। सब्ज़ रंग का एक दुपट्टा हवा के एक हल्के झोंके से खिसककर गले में आ गया था और उसकी चुन्नटें कुछ अधिक विस्तृत हो वक्ष पर दरिया की तरंगें मारती मौजों-सी लहरा गई थीं। सफ़ेद सिल्क का कुर्ता था जो कमर के पास आकर सकरा हो गया था। उसके घुंघराले काले बालों की कुछ लटें बिखर कर मुखाकृति पर आगई थीं और उन धुँए की पर्त-सी बिखरी लटों में—बादलों की घटाओं में चमकता चाँद-सा—मुखड़ा चमक रहा था। आंखें उसकी छोटी थीं, लेकिन नुकीली थीं, जिनकी एक वक्र चितवन में दूसरे के हृदय को वेधने की शक्ति थी। उनमें सुर्मे की एक-एक काली महीन लकीर सफ़ेद मलमल की धोती पर काली नाखूनी किनार-सी खिंची हुई थी। उसके चेहरे पर यौवन की लापरवाही स्पष्ट थी जो मन की चपलता को द्वन्द्व के लिए निर्भीक होकर ललकार रही थी। युवती अपनी बँधी मुट्ठी को अपनी ठोडी के पास ले आई और कोहनी के बल चेहरे को उस पर टिका दिया। नितीन सौन्दर्य की उस अपरिमित मूर्ति को एकटक भावना-प्रधान कवि की भांति देखता रह गया।

युवती के अधर मुस्करा रहे थे, उसे लगता था जैसे प्रभात बेला में नवोदित कली विहँस कर अपना पराग लुटा रही है। नितीन जैसे यथार्थ की भीषण गर्मी से झुलसा शीतल-जल में कमर-तक, फिर अपने कंधों तक, धँस गया हो। और जब यह लड़की शरीर के वामाङ्ग पर बल देकर, फिर यौवन के उभार को दबाकर खिड़की में तिरोहित हो गई थी तो नितीन को लगा जैसे एक युग एक पूरी करवट लेकर बदल गया हो। उसने महसूस किया था कि उसकी परिस्थितियां बदल गई हैं, उसका व्यक्तित्व किसी के सम्पर्क की चाह करने लगा है—सौन्दर्य और नारी की चाह के कारण दृष्टिकोण बदल गया था। उसने अपने अन्दर टटोला था और उसे

अनुभव हुआ था कि शीत में नीड़ में दुबके पंछी-सा ममत्व फड़-फड़ाकर विस्तृत नीलाकाश में परिभ्रमण करने लगा है। उन क्षणों में उसने अपने शरीर से ही जिज्ञासा की थी कि क्या वास्तव में मैं ममत्व-प्रधान हो गया हूँ ? और तभी वह उत्तर पाने की जगह मुस्करा भर दिया था।

नितीन टहल रहा था। एक वेग से वह छत के एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ जाता था और फिर लौट पड़ता था। उसके सामने पड़ौसी के घर की बिजली का प्रकाश था, उसके ऊपर अन्धेरा था। लेकिन इससे भी अधिक अभेद्य अन्धेरा वह अपनी आंखों के सामने अनुभव कर रहा था ! वहां न आशा थी और न प्रेरणा ! उसके चारों तरफ़ उसकी असफलता की, उसकी वेदना और भावना की क़ब्रें किसी कब्रिस्तान के शून्य, एकान्त वातावरण में बनी दिखलाई पड़ती थीं। लेकिन नितीन जीवन में आए दिन चन्द मनोरम चित्रों को देखकर हँस लेता है, बस वही—वही तो उसका कटु 'विगत' है। किसी समय वह उनके लिए तरसता था। आज वह उनसे ऊबकर चिर-निवृत्ति चाहता है।

नितीन सोच रहा था—आज जब मैं कल वाले विगत की ओर पलट कर देख रहा हूँ तो मुझे शीशो के सिवा और कुछ दिखलाई ही नहीं देता। सारी कल्पनाएं और भावनाएं ममत्व में ओत प्रोत बिल्लौर के गिलास में ढले मादक पेय-सी भासित होती हैं। उस दिन खिड़की में खड़ी नवयुवती को देखने के बाद उसकी जिज्ञासा ने लालसा का स्थान ले लिया था। वह, बस दिन भर खिड़की की ओर देखता ही रहा। लेकिन उसकी प्रतीक्षा व्यर्थ नहीं गई। दिन भर की उमस के बाद जब वह सन्ध्या समय अपनी छत पर टहल रहा था तो उसी खिड़की की ओर देखकर पुनः वह ठिठक गया था। इस बार युवती उसकी ओर देखकर मुस्करा रही थी। सम्भवतः वह दिन भर नितीन के उसे लुक-छिपकर देखने के प्रयत्नों को दूर से

निहारती रही है। नितीन उस मुस्कराहट से निहाल हो गया। वह भी छत पर खड़ा उसकी ओर अनिमेष देखता रह गया था। अपनी ओर एक युवक को निःसंकोच निहारते देखकर युवती छुई-मुई-सी सकुचा गई थी, नारी-सुलभ लज्जा उसके कपोलों और आंखों में तैरने लगी थी। उस रात नितीन सो नहीं सका था। कभी उठकर उस खिड़की की ओर देखने लगता और कभी भावावेश में आज की तरह वह टहलने लगता था। लेकिन उस दिन उसके सामने कल्पना थी, एक चित्र था, आगामी जीवन की रूप-रेखा का अत्यन्त मोहक दृश्य था। रात भर न जाने कहां-कहां की नहीं सोचता रहा था—कभी उस युवती की उस मुस्कराहट को लेकर वह जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त कर लेता और कभी उसकी वेष-भूषा और पड़ौसी की जाति के प्रश्न को लेकर एक लम्बी उसांस से मन पर अनायास आच्छादित होती निराशा को दक्खिनी हवा के झोंकों में बहा ले जाता।

सवेरा हुआ तो नितीन उसी खिड़की की ओर देख रहा था। कभी-कभी उसका विवेक उसे कुरेद कर कहता—अरे नितीन, इस मोह में कहां सार है, कहां कुशल है ? इसके आगे जिधर तेरी आंखें कल्पना में तैर रही हैं, असीम दुःख है। और दुःख की कौन कहे—यह सब असम्भव है, कहा नहीं, निरा असम्भव है। लेकिन नितीन काफ़ी आगे बढ़ गया था। नितीन ने अपने को मोहते हुए कहा था—जीवन में असम्भव क्या है ? असम्भव ही क्यों ? मैं असम्भव के बन्धन नहीं मानता। मैं मानता हूँ और अपना भला-बुरा आप जानता हूँ। यदि कहूँ जिधर बढ़ रहा हूँ वही नित्य-मार्ग है, वही गति है, तो कहां अनुचित है ? मैं नहीं खोज पाता।

समय के साथ नितीन बहता गया। खिड़की की ओर देखना उसका नित्य कर्म बन गया था। सोचते-सोचते नितीन की आंखें कुछ गीली हो गई थीं जैसे अन्दर से मोह बर्फ़-सा पिघलकर अश्रु-कण के रूप में

उसकी पलकों से आ लगा हो। एक बार फिर बड़ी ममता से उसने पीछे की खिड़की की ओर देखा और सोचता गया—

मैं बीमार पड़ गया था। कमज़ोरी के कारण चारपाई पकड़ ली थी। उस दिन—हां उसी दिन जब बिस्तर पर पड़ा एकटक उस खिड़की की ओर देख रहा था तो वह खिड़की में आई थी, मुझे बिस्तर पर मुरझाए हुए पौधे-सा देख कर उसने अपने हाथ में मुद्रा अङ्कित कर पूछा था—'कैसी तबियत है ?' मैं एक लहमे में सारे बदन की शक्ति सञ्चित कर उठ बैठा था और संकेत से ही बतलाने की चेष्टा की थी—'तबीयत अब पहले से ठीक है; लेकिन कमज़ोरी बहुत है, उठ नहीं सकता।' और तब उसने इशारे से ही उस आसमान की मूक-सत्ता की ओर उँगली उठाकर उस पर विश्वास करने के लिए और शीघ्र स्वस्थ होने के लिए कामना की थी। मैंने तब और अधिक ममत्व का भाव प्रदर्शित करते हुए संकेत से बतलाया था—'तुम मेरी एक ऐसी अवश्यकता बन गई हो जिसको इस जीवन में एक पल भर भी 'तरह' नहीं दी जा सकती। मेरा जीवन तुम हो।' और मुस्कराकर, फिर कनखियों से तरेरती वह खिड़कियों के अन्धकार में लीन हो गई थी।

दिन तो जीवन के बीतने ही जाते हैं। कुछ दिन पर लगाकर उड़ते हैं और कुछ पंख-हीन पंछी से घिसटते चलते हैं। लेकिन दिन रुकते नहीं, चलते हैं। नितीन सोचने लगा—कितना प्रेम था, कितनी उमङ्ग थी, कितनी आशा थी, जैसे स्थिर जीवन में किसी ने पत्थर फेककर तरगें पैदा कीं और वे समय पा विस्तार ग्रहण करती गईं। जिस दिन मैं उसे नहीं देख पाता, मोह भरा मन बरसी हुई बदली-सा ख़ाली पड़ जाता था। नितीन सोचते-सोचते उस अंधेरी रात में विक्षिप्त छाया-सा हँस पड़ा—बीबो से एक बार मिला भी था। शुक्रवार का दिन था। घर के

मर्द पास की मस्जिद में नमाज़ पढ़ने गए थे। उसने दोपहरी में मुझे इशारे से अपने घर के कम्पाउण्ड में बुलाया था और मैं निःशङ्क गया भी था। उसने मेरे हाथ में एक पत्र दिया था और चुपके से घर में खिसक गई थी। मैं पलट कर भाग आया था और पत्र पढ़कर दिनभर कल्पना में उड़ता रहा था।

तभी नितीन ने सोचा—यह सब व्यर्थ है! अरे व्यर्थ क्या, पागलपन है, एक हिमाक़त है। मुझे याद हैं वे क्षण भी जब उसने कहा था—"यदि तुम मेरी सुरक्षा चाहते हो, यदि चाहते हो मैं बेइज़्ज़ती से बचूं तो यूं घूर-घूरकर देखना छोड़ देना होगा। अब्बा को उड़ते-उड़ते हमारे सम्बन्धों का पता लग गया है और सब से बड़ी बात यह कि अब हाल ही में मेरी मंगनी होने वाली है। 'वे लोग' यह सब सुन पायेंगे तो ख़ून हो जायेगा, हमारी इज्ज़त खाक में मिल जायेगी।' तब नितीन आगे क्या कहता, कह भी क्या सकता था? उसने बीबो की बात को सुन लिया था और उसने दृढ़ संकल्प किया था कि अब वह उस ओर नहीं देखेगा। क्या देखे? क्यों देखे? उसका अपना वहां कौन है? किसकी तलाश में वह अपनी आंखों के पांवड़े बिछाये? लेकिन नितीन मानव था और कमज़ोर था। नितीन उस हाड़-मांस का इन्सान था जिसमें आत्मा वास करती है, फिर किस प्रकार जीवन की इतनी बड़ी घटना को एक दम यूं ही खेल समझकर अन्त कर देता।

एक पूरा वर्ष बीत गया। बीबो कभी दिखलाई दे जाती थी और कभी देखकर भी नत-शिर होकर खिड़की में से गुज़र जाती थी। नितीन यह सब देखता था और वेदना अनुभव करता; लेकिन... वह बीमार पड़ गया। शरीर का मांस गल-गलकर हड्डियों से चिपक-सा गया था। डाक्टरों ने कहा टी॰ बी॰ हो गई है। नितीन के चेहरे पर डाक्टरों के

इस निर्णय को सुनकर एक क्षीण मुस्कराहट पौ फटते उजाले–सी बिखर गई थी। पिता चिन्तित थे। मां निराश मन अपने सामने नितीन के घुलते शरीर की ओर देख रही थीं। लेकिन नितीन का मन जिस अवसाद से घिरा था, उसे भला कौन पहिचान सकता था। नितीन सोचने लगा—

बीमार पड़ा, लेकिन मरा नहीं। पहाड़ पर जाकर स्वस्थ होकर लौटा तो पता लगा कि बीबो की शादी हो गई है और पीछे के पड़ोसी घर छोड़ कर किसी दूसरी जगह उठ गए हैं।

निर्तीन ने सोचा—आज तो इस बात को दस बरस हो गये। वेदना आई गई हो गई। आज तो मेरे भी आगे बाल–गोपाल हैं, सुन्दर पत्नी है। लेकिन जिस उजड़ी कल्पना और भावनाओं के क़ब्रिस्तान की ओर मैं आज भी लौटकर देखता हूं, तो 'वर्तमान' मुझे 'विगत' की ओर जाने से रोक नहीं पाता। नितीन फिर टहलने लगा था कि नीचे से सीढ़ियों पर चढ़ती चार बरस की बच्ची ने तुतलाते हुए कहा—

'बाबूजी, अले हमें बूत लदी है, ओल आप ऊपल हैं?'

निर्तीन ने वहीं से स्थिर स्वर में पुकारा—

'मुन्नी!'

निर्तीन वेग से सीढ़ियों से नीचे उतर रहा था। उसने सीढ़ियों पर खड़ी मुन्नो को उठाकर गोद में भर लिया था। वह विगत से फिर वर्तमान की सतह पर आ लगा था।

क़ब्रों की दुनियां में

कानपुर नगर में सीसामऊ के बड़े चौराहे से जो सामने एक लम्बी सड़क अर्धनिर्मित और अर्धखण्डहर मकानों की लम्बी क़तार को अपने दोनों बाजुओं की तरफ़ छोड़ती 'रेलवे क्रासिंग' पार कर तिलक नगर की नौआबादी की ओर गई है, वहीं एक क़ब्रिस्तान है। एक लम्बा-चौड़ा उजाड़ भूमि खण्ड है, जिस पर अनगिनती मुसलमानों की क़ब्रें बनी हुई हैं। उन में से कुछ समय का बोझ सहते-सहते ढह गई हैं, कुछ के पत्थर इधर-उधर बिखर कर समथल होगई हैं, कुछ पर सङ्गमरमर की उर्दू में खुदी हुई पट्टियां आज भी इस बात की गवाही दे रही हैं कि इसके नीचे अमुक नवाब...अमुक रईसजादे...अमुक बेग़म और अमुक नागरिक फलां तारीख को गाढ़े गए थे, उनकी इतनी उम्र थी, यह उनके खानदान का शिजरा [वंशावली] था। जीवन में अर्थ को लेकर जहां विषमता है—ऊंच-नीच की भावना है, छोटे-बड़े की सीमाएं हैं, जीवन के बाद मृत्यु से किए गए इस संधि-स्थल [क़ब्रिस्तान] में भी उनही भावनाओं और प्रेरणाओं का साकार रूप देखने को मिलता है। चन्द टूटी हुई क़ब्रें कुछ अधपक्की अपनी ग़रीबी की मौन गाथा कहती हुई क़ब्रें, कुछ सादा

[क़ब्रों की दुनियाँ में

लेकिन पुख्ता पत्थरों से निर्मित क़ब्रें और कुछ शानोशौक़त की प्रतीक संगमरमर, संगमूसा और क़ीमती लाल पत्थरों में पच्चीकारी, मीनाकारी और कुरान की आयत खुदी हुई मेहराबदार कलापूर्ण क़ब्रें ।

क़ब्रिस्तान में जिधर से अन्दर जाने के लिए रास्ता है उस टीन के दरवाज़े के पास ही तीन पक्की कोठरियां हैं, दो-थक पाटौरें हैं, जिनके सामने प्रायः बकरियां पेड़ों से गिरे हुए पत्ते, हरी दूब या घरवालों द्वारा फेंकी गई फटकन के दाने चरा करती हैं और दिन में मेंगनियों के ढेर इधर-उधर चारों तरफ़ लगाती फिरती हैं । इन पाटौरों में इस क़ब्रिस्तान की देख भाल के लिए एक वृद्ध मौलाना सपरिवार रहते हैं । एक ज़माने से वह यहीं रहते आए हैं । नित्य उन्हें इस क़ब्रिस्तान के अन्दर सोती हुई आत्माओं की शांति के लिए दुआएं मांगनी पड़ती हैं, निवाज देनी पड़ती है और क़ब्रों पर जाकर लोभान जलाकर दोनों हाथ उ[illegible] आसमान पर वास करने वाली नूरसत्ता के प्रति उठा कर स[illegible] मन से प्रार्थना करनी पड़ती है । सुबह उठते ही वह पक्की क[illegible] झाड़ू लगाते हैं और इस सब के एवज में उन्हें शहर के मुस्लिम [illegible] माहवारी बंधी हुई है, जिससे कि उनकी गुजर-बसर होती है ।

मौलाना सरदार अली की लम्बी उम्र कज[illegible] खेल देखते-देखते गुज़र गई है । रोज़ ही वह देख[illegible] जवान वृद्ध, मासूम बच्चे, नवयुवतियां, अधेड़ स्त्रियां [illegible]न-बच्चियां तरह-तरह से अपनी ज़िन्दगी का खेल ख़त्म कर इ[illegible]ा लगती हैं, जैसे दरिया में घन्टे दो घन्टे के लिए मनोविनो[illegible] कर आदमी फिर दरिया के किनारे आ लगे । आरम्भ [illegible] इन मुर्दों को देख कर रो पड़ते थे—उनके अनल्ययस्त हाथ [illegible] थे और वह घबरा कर अपनी विस्फारित आंखों को घुमा कर [illegible] को

क़ब्रों की दुनियाँ में

पोंछ लिया करते थे। लेकिन समय के साथ-साथ उनकी यह भावना तिरोहित होगई है, मन में दृढ़ता आगई है और उन्हें यह मृत्यु और उसके बाद की क्रियाएं सब कुछ स्वाभाविक दिखने लगा है। जब 'शव' को लेकर उसके रिश्तेदार मित्र और सगे प्रियजन लेकर आते हैं और अपने बीच के साथी को अलविदा करते समय अपने अन्दर बारिश के घने, काले बादलों, सी घनीभूत वेदना से बिलकुल विकल हो सिसक पड़ते हैं, उस असीम क्लान्त और वेदनासिक्त वातावरण में भी मौलाना की अंगुलियां अपने बंधे हुए ढंग से काम करती रहती हैं। उनके चेहरे पर दुःख या समवेदना की एक हलकी सी शिकन भी नहीं व्यक्त होती— निर्जीव मशीन की तरह उनके अवयव सामने रखे शव को देख कर भी काम करते रहते हैं। यदि कभी शव के साथ आये लोगों ने विछोह की भावना या दुख की कल्पना कर अधिक हाय-तोबा मचाई तो वह संयत और संक्षिप्त शब्दों में कह भर देते हैं:— खुदा को यही मंजूर था"

जहां मौलाना सरदारअली जीवन से इतने उदासीन होगए हैं, वहां उनकी [illegible] सकीना को जीवन से बड़ा प्रेम है। मृत्यु की बात उसके लिए [illegible]। लेकिन नित्य ही वह मृत्यु और उसके बाद की क्रियाओं को अपनी आंखों से देखती है और वह दुपट्टे में अपना मुंह छुपा [illegible] ज़मीन में गड़ने के लिए आने वाले व्यक्ति के लिए आंसू [illegible] अपना दिल हलका कर लेने का यत्न कर लिया करती है। वह [illegible] जानती है कि एक बार जो मौत के घाट उतरा उसके लिए आंसू बहाना, समवेदना व्यक्त करना या शोकातुर होना निरा व्यर्थ है— [illegible] भावना है जो जीवन को बल नहीं देती अशक्त बना देती है [illegible] और संकल्प को ढहा देती है। फिर भी ममता को, मानव होकर [illegible] कौन छोड़ पाया है! किसने जीवन की अंतिम सांस रहते

इस प्रवंचना की अवहेलना की है ! सकीना ने जबसे होश सम्हाला है वह अपने अनुभव से इस प्रवंचना को ही सत्य समझ पाई है । इतना बड़ा तो सत्य उसकी आंखों के सामने से रोज़मर्रा निकलता है ।

सकीना अपने जीवन के बीस बसन्त इस क़ब्रिस्तान के भयानक और कटु वातावरण में ही नित्य जीवन और जीवन के बाद मृत्यु की दुर्घटनाओं को देखते-देखते बिता चुकी है । लेकिन इनका उसकी नारी-सुलभ कोमल अनुभूतियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है । उसके अन्तर की समवेदना और दूसरे की पीड़ा को अनुभव करने की शक्ति में कहीं भी क्षति नहीं आई है—आज भी उनके हृदय में इन निर्जीव मुर्दों और उनके सम्बन्धियों के करुण रुदन को सुन कर उसकी शिराएं एकबारगी कांप उठती हैं । और वह अतिवेदना से पीड़ित हो रुआँ-सी हो जाती है। एक हलकी-सी निःश्वांस इन घटनाओं का सिंहावलोकन करते समय उसके उठे हुए वक्षस्थल को मर्मान्तक कर निकल पड़ती है । ऐसा नहीं कि कभी-कभी उसे अपनी इस ममतामयी प्रवृत्ति पर खीझ न उठती हो, लेकिन वह इस खीझ को लेकर भी, जिसे सत्य मान बैठी है और जिसके कारण उसे अपरिमित दुख का सामना करना पड़ता है, एक क्षण के लिए भी अवहेलना नहीं कर पाती है । उस ओर से परांगमुख होने का प्रश्न ही जैसे उसके लिए असम्भव है—नित्य अकल्पनातीत है । इस यौवनसम्पन्न सकीना की यह परदुखकातर प्रवृत्ति उसके बूढ़े पिता को विचित्र-सी, किसी अंश तक पागलपन-लगती है । उसने एक लम्बा जीवन देखा है और आज तो उसके पास में अनुभव की एक गहरी रक़म जमा होगई है । उस अनुभव के आधार पर ही उसने यह जाना है कि दूसरे के लिए व्यर्थ में सोच-विचार कर अपना मन छोटा करना, मानों अपनी शक्ति साहस और जीवन के साथ दगा करना है । इस सम्बन्ध में एक कठोरता की पर्त पानी पर तेल की पर्त-सी उसकी

विचार-शक्ति पर छा गई है। और उसका विश्वास है कि वेदना और समत्व का जीवन में कुछ मूल्य हो तो हो, लेकिन सत्य के बाद वह सब व्यर्थ है—पागलपन है। वह देखता है कि सकीना जिस तरह वह जीवन और मृत्यु को लेकर सोचता है, नहीं उस तरह सकीना सोच पाती और इसी कारण उसका जीवन वेदना और शोक का क्रीड़ा-स्थल बनता जा रहा है। वह सकीना की समवेदना वाली बात को लेकर सोचता है। दुःख और विक्षोभ अपनी प्यारी लड़की की इस भावना को लेकर उसे कम नहीं होता, वह अपने पर एक अप्रत्याशित विचार लेकर क्रुद्ध होता है और फिर बुदबुदाने लगता है।

चौदह मार्च सन् उन्नीस सौ छियालीस की बात थी। दोपहरी हो चली थी और धूप में मौसम के परिवर्तन के साथ-साथ कुछ गर्मी आ चली थी। सकीना अपनी कोठरी के सामने चारपाई बिछाए अपनी छोटी बहन के पैजामे में बन्द लगा रही थी। बूढ़े मौलाना को अभी-अभी शहर से ख़बर मिली थी कि अमुक खानबहादुर के जवान बेटे की बहू मर गई है और अर्थी बारह बजे तक आने वाली है। इस ख़बर को सुनकर फिर वह घर में एक मिनिट के लिए नहीं रुके थे, वैसे ही तहमद बांधे वह मजदूरों की खोज में निकल गए थे। किसी आशा से उनकी आंखें दीप्त थीं—खान बहादुर के लड़के की बहू है, जरूर एक गरम कपड़ा ओढ़ने के लिए मिलेगा—आशा ही नहीं विश्वास है कि और लोगों की अपेक्षा उसे इन लोगों से ज्यादा चांदी के सिक्के मिलेंगे। मौलाना प्रसन्न थे और उनकी प्रसन्नता उनकी मुस्कराहट उनकी स्फूर्ति और उनकी आकृति पर बारिश के बाद धुले हुए आसमान के क्षितिज से स्फुटित होती सुनहली सूर्य की किरणों-सी स्पष्ट थी। मौलाना व्यस्त थे। मौलाना जागरूक थे। और उनका काम में ख़ूब मन लग रहा था—वह मज़दूरों को शीघ्रातिशीघ्र गड्ढा खोदने के लिए ताकीद कर रहे थे। मज़दूरों के हलके हाथों से

फावड़ा चलाने से उनके अन्दर की खीझ क्रोध का रूप ग्रहण कर उभर आती थी—उफन जाती थी। बार-बार उनकी निगाह टीन के बड़े दरवाज़े की ओर जाती थी। वह अपने अन्दर एक बेचैनी-सी अनुभव कर रहे थे, जो उन्हें धूल के आवर्त में पड़े सूखे पत्ते-सी परेशान कर रही थी। सकीना पैजामे में बन्द लगा चुकी थी। उसने पैजामे को एक तरफ़ रक्खा, सुई को डोरे की रील में उर्स दिया और तब अघाकर दोनों हाथ पीछे ले जा निवृत्ति की जमुहाई ली। इस तरह स्वस्थ होकर वह अभी अपने आस-पास फैली चीजों को समेटने में लगी ही थी कि अर्थी फाटक के नज़दीक आ पहुंची। एक बड़ा-सा कामदार पलंग था, उसपर शव कफन से ढका हुआ था। पलग के एक एक पाये को एक एक आदमी पकड़े हुए था और अर्थी के आगे और पीछे भीड़ थी। सकीना झपट कर अपनी चारपाई से उठी और ज़रा ओट में हो गई। पलंग के अगले सीधे हाथ के पाये को मृतक का खाविन्द पकड़े हुए था। वह लाख अपने आसुओं को रोकने का यत्न कर रहा था लेकिन अपनी पत्नी की वे सुखद स्मृतियां, जिन्होंने कभी उसे जी भरकर हंसाया था, आज भयानक बनकर उसे रुला रही थीं। उसकी आंखों से बराबर आंसुओं की धाराएं उसके कपोलो को छूती हुई नीचे की ओर ढुलकती जा रही थीं—उसकी आंखें शायद रात भर जागते और रोते रहने के कारण सुर्ख–लाल परू के फूल-सी हो गई थीं—बाल चेहरे के चारों ओर छितरा गए थे— कुर्ते के सोने के बटन खुले हुए थे और वह बार-बार हाथ के रूमाल से मुँह पोंछ कर स्वस्थ होने और रुलाई रोकने का प्रयत्न कर रहा था। सहसा साथ के एक बड़े मियां ने एक ऊँची निःश्वांस छोड़ते हुए कहा—'लाइलाही इल्लिलाह मुहम्मद रसूलिल्लाह।

अर्थी क़ब्रिस्तान के फाटक के पास से गुजर रही थी। सकीना ने देखा कि मृतक का नवयुवक खाविन्द हिचकियां भर-भर कर सिसक पड़ा है—उसका कंठ अवरुद्ध हो गया है और उसकी विस्फारित आंखें उलटी कौड़ी-

सी पथरा गई हैं। सकीना का हृदय उस नवयुवक की असीम वेदना को देखकर समवेदना से भरने लगा। उसने मन ही मन कहा—यह नवयुवक अपनी पत्नी को कितना चाहता होगा—दोनों ने कितने दिन, कितने हफ्ते और कितने महीने हंसते, तरह-तरह के मंसूबे बांधते बिता दिए होंगे! पत्नी ने रूठने का अभिनय किया होगा और इस नवयुवक ने उस मानिनी को मनाते हुए न जाने कौन सा अमृत उसके कानों में उड़ेल दिया होगा। एक ने भ्रूक्षेप किया होगा और दूसरे ने अपने सीधे हाथ की अंगुलियों से उसकी ठोड़ी उठाकर अपनी आंखों द्वारा हृदय का संदेश मौन भाषा में व्यक्त कर दिया होगा—और तब दोनों ही खिलखिलाकर हँस पड़े होंगे। सकीना कल्पना के मेह में भीगती और अन्दर ही अन्दर सजीव होती जा रही थी। जीवन में कल्पना और भावना की कमी थोड़े ही है। न जाने कितने रूप ग्रहण कर भावनाओं ने अपने नागपाश में इस युगल को फंसाया होगा। जीवन की एक से एक बढ़ कर मनोरम कल्पनाएं रात रातभर गलबाहीं डालें—इनके बनाये मन्सूबे आज उन सबकी क्या सार्थकता है? क्या मूल्य है! और ये कल्पनाएं और भावनाएं ही तो इस नवयुवक को आज सता रही हैं—उसके संयम और साहस को स्मृति के भीषण अन्धड़ में अकऊए के हऊए-सा उड़ाये देती हैं। फिर अव-साद उसके मन को तिमराच्छन्न करने लगा।

अर्थी क़ब्र के पास पहुँच गई थी। सकीना उस नवयुवक की वेदना के स्पर्श से जैसे मुरझा गई थी। उसकी बड़ी इच्छा हुई कि वह उस शव को दफनाते देखे। लेकिन जिस सीमा के अन्दर वह आजतक विचरती रही है उसे तोड़ने का भी वह साहस न कर सकी। कुंठित होकर कोठरी के अन्दर चारपाई पर सीने-पिराने का काम निकालकर उसमें व्यस्त होने की चेष्टा करने लगी। सहसा उसने देखा, अब्बा ने तेज़ी के साथ कोठरी में प्रवेश किया है और तुरन्त लोटे में पानी भरकर जाने लगे

हैं। सकीना से अपना कुतूहल न दबाया जा सका। घबराबर बोली, क्या हुआ अब्बा ?

अब्बा ठहर गये। बोले, "क्या बताऊं बेटी, अजीब जनून नन्ने मियां पर सवार हुआ है। कहने लगे, मेरी बीबी को मुझसे अलग न करो। और अब बेहोश पड़े हैं।"

सकीना ने एक लम्बी सांस ली, जैसे अपने से ही प्रश्न कर रही हो कि क्या यही जीवन है ? वह अपनी जगह पर पुनः बैठ गई, लेकिन इस बार वह अपना मन सीने-पिरोने में न लगा सकी—ख़ामोश, अपने सामने के शून्य की ओर तकती केवल अपने अन्दर की व्यथा को पकड़ने का यत्न करती रही। न जाने कितनी देर तक वह इस प्रकार बैठी रही, लेकिन अनायास अपने बूढ़े पिता को प्रसन्न वदन कोठरी के अन्दर आते देख कर उसकी मोह तंन्द्रा टूट गई। बूढ़े मौलाना ने स्नेह से सकीना से कहा—

"सकीना! सच आज किसी अच्छे का मुंह देखकर उठा था—तभी तो, मैंने कहा तभी तो एकदम पचास रुपये की रक़म और यह देखो ऊनी बढ़िया पश्मीने का दुशाला मिल गया है। मेरी सक़ीना जब इसे ओढ़ेगी तो कितनी भली लगेगी।"

और मौलाना ने वह दुशाला पश्मीने का सकीना के ऊपर उढ़ा दिया। सकीना की आत्मा इस लोभ से क्रन्दन कर उठी। उसे उस समय कुछ भी भला नहीं लग रहा था। एक व्यथा डाक्टर के तेज नश्तर सा उसके हृदय के, चीर-फाड़ कर टुकड़े टुकड़े किए देती थी। विक्षोभ और अवसाद का जैसे उसके अन्दर अगाध भण्डार भर गया था और जैसे उसका सर्वस्व उसके रसातल के नीचे समाता जा रहा था। रुआंसी होकर उसने अपने को सम्हालते हुए कहा—

"अब्बा यह आप क्या कर रहे हैं !"

मौलाना ने बच्ची के गले से निकली रुआनी आवाज़ को अनुभव किया, फिर सिर हिलाकर कहने लगे—"तो बेटी तुम्हें हो क्या गया है ! जिस मरने वाले के लिए तुम इस क़दर परेशान होती हो, उससे उनका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है, फिर यह सिर दर्द लेने से क्या फ़ायदा ?"

लेकिन अवस्था में कई गुना छोटी सकीना किस प्रकार इकट्ठे पचास रुपये और पश्मीने की शाल पाने वाले वृद्ध पिता को समझाये कि समवेदना जैसी चीज़ इंसान के लिए ही पैदा की गई है और मानवता के इस तत्व की अवहेलना नहीं की जा सकती, फिर चाहे इस भावना में लाभा लाभ की मात्रा रहे और चाहे न रहे। सकीना ने अपने पिता की बात का कोई उत्तर नहीं दिया, सिर्फ़ शाल उतार कर एक तरफ़ रख दिया। वृद्ध मौलाना भी आगे कुछ न कह सके, वहां से बाहर चले गए।

× × × ×

जीवनमें दिनों की गति विचित्र है। लगता है जैसे यह दिनों की महिमा अपरम्पार है ! इस में दुःख है, क्षोभ है, ईर्षा है, हिंसा है, खून है, वेदना है और शोक, जैसे सारी दुनियां इन्हीं में सन्निहित है। दिनों की दुनियां के आगे कुछ नहीं है—न कल्पना और न भावना ! एक भयानक शून्य है और मृत्यु है। सकीना ने इस सत्य को हृदयङ्गम किया है और इस कटुता को महसूस कर विकम्पित हो उठी है। दोनों की इस गरिमा पर उसने विचार किया है, लेकिन उसे अपने जीवन में ऐसे दिनों का लेखा-जोखा नहीं मिला है, जिसे देखकर वह एक तृप्ति की सांस ले सके। अब तक का सारा जीवन ही जैसे दूध के ऊपर मलाई उतरा नीरस और बेस्वाद हो रहा हो। लेकिन क़ब्रिस्तान की शुष्कता और ममत्वहीन कठोरता की वह साधक नहीं है। वह तो अन्दर और बाहर दोनों ही दिशाओं में

धुनी हुई रुई-सी मुलायम और नव विहसित जुही की कली-सी कोमल और परागयुक्त है। वह भी अपने ममत्व और मम वेदना की सार्थकता अपनी आंखों देखना चाहती है। लेकिन इस दिशा में वह कितनी एकांकी है—कितनी निरीह और निरावलम्बी है, यह कोई सकीना के नारी-हृदय से पूछे।

नन्हें मियां के अपने पत्नी के चिर-विछोह में बहाये गये आंसुओं की अविरल प्रवाहित धाराओं को सकीना विस्मृति में न धकेल पाई। जब कभी वह उस दृश्य को लेकर सोचने बैठती तो एक टीस सी उसके हृदय में उठती—एक अप्रत्याशित वेदना से उसका विवेक ढंक जाता तब वह कभी सोचने लगती उसपर भी कोई इस तरह आंसू बहायेगा; लेकिन जिस एकांकी जीवन को लेकर वह गुजर कर रही है उसमें ऐसी कहां सम्भावना है! इस एकांकीपन को लेकर उसका नारी हृदय तब विद्रोह कर उठता, ऐसा विद्रोह जो ऊपर से पूर्णचन्द्र-सा शांत और स्निग्ध दिखते हुए भी अन्दर किसी फैक्टरी के बायलर सा ही दहकता रहता है। वह अपनी आंखों नित्य देखती है की शाम होते ही नन्हें मियां ताज़े गुलाब के फूलों का हार मोगरे और चमेलीके गजरे लेकर अपनी पत्नी की क़ब्र पर आते हैं और उन हारों और ताज़े फूलों को क़ब्र पर चढ़ाकर घंटों 'अश्क' का दरिया बहाया करते हैं। इस दृश्य को देखकर सचमुच सकीना चाहती है कि उससे भी कोई प्रेम करे और उस प्रेम के आधार को लेकर वह आत्म-समर्पण करदे और अपने प्रेमी में आत्मसात् हो जाये। कुछ दिनों से सकीना की यह भावना बल पकड़ती जा रही है। और वह संध्या बेला की अधीरता से प्रतीक्षा करने लगती है। जब नन्हें मियां गुलाब के हार और मोगरे के गजरे लेकर अपनी पत्नी की क़ब्र पर जायेंगे और घंटों अपनी मृतक पत्नी की याद में आंसू बहायेंगे। उतने समय को वह एकाग्र मन से एकटक उस ओर देखती बिताती है। कभी घर के किसी

आदमी ने उसे इस तल्लीनता से उस ओर देखते देख लिया है तो वह अपने में ही लज्जा और संकोच से कटकर रह गई है। फिर भी वह उस ओर देखना, या उस ओर से अपना मन नहीं हटा पाई है।

रमज़ान के दिन थे, रोज़े खत्म होने को थे। आख़िरी जुम्मा था। सकीना ने उस दिन नहा-धोकर नये कपड़े पहने थे नहा धोकर जब वह चोटी करने के लिए अपने छोटे से सिंगारदान से शीशे को निकालकर देख रही थी, तो अनायास उसकी आंखों के सामने नन्हें मियां आगये— उनका शोक–विह्वल चेहरा, मुर्दे से शिथिल हाथ–पैर, पथराई आंखें और आंखों से अश्क के बहते हुए दरिये। इस कल्पना के साथ ही उसका यौवन सम्पन्न वक्ष–स्थल कुछ अधिक सुविस्तृत हो रबड़ के गुब्बारे सा फूल गया और फिर एक लम्बी सांस निकालकर प्राकृतिक हो गया। सकीना का फिर अपने श्रृंगार में मन नहीं लगा, वैसे ही उसने बालों में झटपट कंघी की और चोटी करके वह अपनी कोठरी के सामने पड़ी चारपाई पर आ लेटी। लेकिन उसके आश्चर्य और लज्जा का उस समय ठिकाना न रहा जब उसने नन्हें मियां को उस असमय अपने अत्यन्त नज़दीक से गुज़रते देखा। उसने एक लहर में कोशिश की कि वह उठकर ओट में हो जाय लेकिन उसका प्रयत्न विफल गया और वह अपनी सुन्दर बड़ी बड़ी आंखों से तब नन्हें मियाँ की ओर ही देखती रह गई। नन्हें मियाँ के हाथ में आज फूलों के दौने के अतिरिक्त मिठाई का भी दौना था—वह आज अपनी बीबी की क़ब्र पर 'नियाज' दिलाने आये थे। मौलाना की कोठरी के सामने सकीना को बैठा देखकर पूछा—

"मौलाना कहां है?"

सकीना ने शरीर के चापल्य को स्थिर कर नत नेत्रों से ज़मीन की ओर देखते हुए कहा:—

'उधर ही क़ब्रों की तरफ़ गये हैं।'

नन्हें मियां आगे बढ़ गये। सकीना उनके चले जाने के बाद भी बड़ी देर तक उस ओर देखती रही, जैसे इस जाने वाले के साथ उसकी आकांक्षाओं का सार बंधा है।

दिन बीतते जाते हैं और सकीना के जीवन में एक ताजगी, ऋतु बदलने के वातावरण के समान भरती जाती है। अपने प्रति उदासीन रहने वाली सकीना आवश्यकता से अधिक अब वेष-भूषा से सुसज्जित और अन्दर-ही-अन्दर जागरूक रहती है। पुरानी मुहर्रमी उदासीनता को जैसे उसने 'अलविदा' दे दी है। बूढ़े मौलाना इसे इस तरह प्रसन्न देख कर मन-ही-मन फूले नहीं समाते। लेकिन उन्हें इस परिवर्तन का कारण मुतलक नहीं मालूम। सोचते हैं बच्चों की सनक है, सकीना अब जीवन की आवश्यकताओं को, उसकी वास्तविकता को समझती जा रही है। लेकिन सकीना केवल इतना ही समझ पाई है कि उसे भी जीवन में नन्हें मियाँ जैसे एक व्यक्ति की ज़रूरत है जो उससे प्रेम करे और उसके नारीत्व के अन्दर छिपे हुए ममत्व को सार्थक करे। सकीना अब इस बात का जान-बूझकर प्रयास करती है कि जब नन्हें मियाँ उस क़ब्रिस्तान में प्रवेश करें तो एक बार उससे उनकी भेंट अवश्य हो जाय। लेकिन नन्हें मियाँ का इन बातों की ओर किंचित भी ध्यान नहीं है। शायद वह इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता भी नहीं समझते।

और भी दिन बीतते जाते हैं। सकीना को यह दिन ऐसे लगते हैं जैसे दिनों में पंछी की तरह पंख लग गये हैं और वे सुदूरवर्ती नीलाकाश में लम्बी उड़ान भर-भरकर पल भर में आंखों से ओझल हो जाते हैं। नन्हें मियाँ ने कभी-कभी सकीना की ओर देखा भी लेकिन उनके उजड़े हुये उपवन में इतनी तरी ही कहां थी कि वह सकीना के सौन्दर्य से प्रभावित होते और...... । खैर, दिन बीतते गये और सकीना के अन्दर

प्रेम का स्रोत परिप्लावित होता गया। कभी सोचती, आज नन्हें मियां के आने पर अवश्य मैं बातचीत करूंगी, कि तभी उसका नारी-हृदय उसकी निर्लज्जता पर हज़ार बार धिक्कारने लगता और उसकी कल्पनाएं मर्यादा की सीमा में आ जातीं। ऐसा ही एक दिन था जब सकीना बनी-ठनी अपनी कोठरी के आगे पड़ी चारपाई पर बैठी कल्पना-कानन में उड़ रही थी कि नन्हें मियां ने टीन का दरवाज़ा खोल कर प्रवेश किया। उस दिन सकीना अपनी जगह से हिली और न उसने संकोच या लज्जा का ही भाव व्यक्त किया। नन्हें मियां ने सकीना के ज़रा निकट आते हुये पूछा—

'मौलाना साहब अन्दर हैं क्या?'

सकीना ने एकटक नन्हें मियां की ओर देखते हुये कहा, 'नहीं, कहीं बाहर चले गये हैं। आप बैठिये, आते ही होंगे।

नन्हें मियां ने अपने कोट की जेब से चमड़े का पर्स निकालते हुये कहा, 'नहीं, नहीं, ज़रा ठहरिये, आज मेरे पास बैठने का समय नहीं है। एक बात सुनिये।'

लौटकर कोठरी की ओर जाते हुये सकीना के पांव ठिठक गये 'कहिए।'

नन्हें मियां ने तब बिना किसी लगाव के कहना शुरू किया, 'बात यह है अब मेरी शहर में तबियत नहीं लगती है। वालिद का तबादला भी पेशावर हो गया है। मैं भी उनके साथ जा रहा हूं। इसलिए ज़रा मौलाना साहब की मदद चाहता था, खैर जब वह नहीं हैं तो आपही सुन लीजिए।'

नन्हें मियां के पेशावर जाने की बात सुनकर वह विचलित हो उठी। बिना किसी संकोच के उसके मुंह से निकल गया—

'दरअसल आप बाहर जा रहे हैं?'

नन्हें मियां ने बिना सकीना की ओर देखे पर्स से नोट निकाल कर गिनते हुए कहा, 'फिलहाल और अभी जल्द लौटने का इरादा भी नहीं है। मेहरबानी करके यह तीन सौ रुपये मौलाना साहब को दे दीजिए कि वह रोज़ाना ताज़े गुलाब के फूलों का हार और गोदरे के गजरे...उस क़ब्र पर चढ़ा दिया करें। वैसे मैं पेशावर जाकर और उन्हें ख़त लिखूँगा।

सकीना, क्या कहे, कैसे कहे, कि ऐ जाने वाले मुसाफ़िर तेरे साथ मेरी आकांक्षाएं भी दामन से बंधी हुई हैं और तू उन्हें इस तरह सड़क के पत्थर की तरह ठुकरा कर चला जा रहा है। माना कि तुझे अपनी पत्नी से बड़ी मुहब्बत है लेकिन इस मुहब्बत को तूने किसी दूसरे की आंखों में भी देखने की एकबार चेष्टा की? लेकिन वह कुछ कह न सकी अवाक् नोटों की गड्डी को हाथ में लिए लौटने हुए नन्हें मियां की ओर देखती रह गई। उसका अन्तःकरण वेदना से हाहाकार कर उठा और वह बरबस अपनी रुलाई रोकने का यत्न करती रही।

रात अन्धेरी थी और आकाश में संशयात्मक मन से काले-काले बादल घुमड़ रहे थे। कभी-कभी विचारों के प्रवाह-सी विद्युत-रेखा क्षितिज के एक सिरे से दूसरे सिरे तक कौंध जाती थी। प्रवल वायु के सन··· सनन करते झोंके पीपल के सूखे पत्तों से टकरा कर एक ऐसा भयावह चीत्कार करते कि स्थिर मन का सम्बल भी लोल लहरों पर डोलती तरणी-सी डोल जाता—अवयव विकम्पित हो उठते। तूफ़ान की आशंका थी। जिस प्रकार ज्वालामुखी फूट निकलने के पूर्व धीरे-धीरे लावा एकत्रित होता रहता है, उसी प्रकार बादल घने होते जा रहे थे और पूर्वी हवा में वेग आता जा रहा था; बिजली का कौंधना बढ़ता जा रहा था। लेकिन शिवनाथ इस तूफ़ान से भरी रात में दृढ़ता से क़दम उठा विक्षिप्त-सा खोया-सा शहर के बाहर चला जा रहा था। जिस अन्तर्जगत की भावना में वह लीन था, उसमें प्रकृति का यह वाह्य रौद्र रूप गौण था। शिवनाथ के चलने में जो दृढ़ता लिए हुए तेज़ी थी वह इस बात की द्योतक थी कि वह एक प्रण के साथ आगे बढ़ रहा है और उसे आगे ही बढ़ते चले जाना है। सहसा पानी की एक फुहार उसके बदन पर आ गिरी। वह

सिहर उठा। लेकिन चलने की गति वैसी ही बनी रही। वह शहर से बाहर हो गया था। चलते-चलते वह एक टीले पर खड़ा हो गया और उसने लौट कर शहर की ओर देखा जहां बिजली का प्रकाश अब भी हो रहा था—जहां आकाश चुम्बन करती इमारतें अब भी अपनी नीरव-आस्था का मौन सन्देश देती खड़ी थीं। शिवनाथ ने जुगनू से टिमटिमाते शहर के बिजली के बल्बों की ओर देखा, जिनसे क्षीण प्रकाश प्रसारित हो उसकी आंखों के सामने एक टेढ़ा-मेढ़ा रजत-मार्ग सा बना रहा था। शिवनाथ ने उन क्षणों में अनुभव किया, जैसे अन्दर की पशुता उसपर एकच्छत्र आधिपत्य जमाती जा रही है और विवेक उसके हाथ से निकला जा रहा है। शिवनाथ ने शहर से घूमकर सामने की नीरव, जन-कोलाहल रहित, किसी हद तक भयानक जंगली पगडण्डी की ओर देखा और तभी उसके सामने बिजली अपनी पूरी बीभत्सता के साथ राक्षसी-दांत चमकाती लोप हो गई। शिवनाथ विवेक रहित संतप्त पागल-सा अट्टहास कर उठा। उसकी ऊँची आवाज़ विन्ध्य-शैल-माला के सिलसिलों से टकराई और फिर भौंरे के गुंजन-सी मद्धिम पड़ तिरोहित हो गई। शिवनाथ उस समय प्रेत छाया-सा एक टीले पर खड़ा रहा। शिवनाथ का उन्माद दूध के पहले उफान-सा निकल गया था—सोचने की शक्ति उसमें तेज़ी से लौट रही थी और जिस भावना को लेकर वह इस भयानक अन्धेरी काल-सी विकराल रात में आगे बढ़ आया, उसके सिंहावलोकन की प्रवृत्ति उसमें जागरूक हो उठी। एक बड़ा-सा बोझ उठा कर किसी निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने के पश्चात् जिस प्रकार थकान उभर आती है और अवयव शिथिल पड़ जाते हैं, शिवनाथ वैसी ही थकान अपने अन्दर अनुभव कर रहा था। उसके हाथ-पैर जवाब दे रहे थे और मन बैठ कर स्वस्थ होने की प्रेरणा दे रहा था। शिवनाथ पुनः शहर की ओर घूम कर टीले पर बैठ गया। शिवनाथ सोच रहा था—

दृढ़ विश्वास की बुनियाद पर उसने अपनी आशाओं की जो इमारत तैयार की थी वह तो एक क्षण में धराशायी हो गई। जिस समय उसके विश्वास की हत्या और आशा का ध्वंस हो रहा था, उस समय वह सोच नहीं पा रहा था कि ऐसा सब क्यों हो रहा है—किस त्रिकुटी के कारण उसे जीवन में यह असह्य असफलता मिल रही है? उसे लगा जैसे सचमुच किसी ने अणुबम डालकर कल्पना की सार्थकता को स्वाहा कर दिया है और अब अवशेष बचा है जीवन भर का क्रन्दन—और कटुता से भरा हुआ भयावह यथार्थ! और वह कांप उठा था। तब ही पराजयवाद ने उसमें घर कर लिया था और वह शहर में, जहां उसकी आशाओं का श्मशान बन चुका था, अधिक ठहर नहीं सका था—पराजित सेना के रणक्षेत्र से उखड़े हुए पैरों-सा वह भी भाग खड़ा हुआ था। शिवनाथ सोचते सोचते रुका! उसने अपनी आंखें सामने के शून्य में गड़ा दीं; फिर अवसाद से घिरे उसके चेहरे पर मुस्कान की एक क्षीण रेखा अंकित हो गई। उस मुस्कान में मूर्तिमती विवशता थी—असफलताओं की ओर एक ऐसा विद्रूपात्मक संकेत था जो दूसरों को शिवनाथ की ओर देखने, सहानुभूति प्रगट करने के लिए अवश्य प्रेरणा देता। शिवनाथ सोचने लगा—

गांव से अपने जिस निजत्व को लेकर आज से पांच वर्ष पूर्व मैं शहर में आया था, उसका अन्त तो शहर की रंगीनियों में हो गया। और शहर के जिस वातावरण में उसके नव-निजत्व का निर्माण परिस्थितियों के सहारे हुआ था, उसका विनाश आज की परिस्थितियों में हो गया। आज जब वह शहर से भयाक्रान्त होकर लौटा है तो वह पाने की जगह बहुत कुछ खोकर लौटा है—यहां तक कि अब वह किस आस्था और विश्वास को अपना निजत्व, अपना अभिमत बतलाये—यही

बतलाना या उसके विषय में सोचना उसके लिये असम्भव और किसी हद तक अप्रीतिकर है!

शिवनाथ चौंका—

जीवन के लम्बे पांच वर्ष! विश्वास और आशा का पांच वर्ष का इतिहास! और इस विचार के साथ ही उस भयानक अन्धेरी, तूफ़ान से भरी रात और निर्जन-नीरव जङ्गल में उसके सामने मनोरमा साकार हो गई थी—ठिगना क़द, बबूल की फलियों जैसे छल्ले बने हुए घुंघराले बाल, आसव-सिक्त मादक आंखें, यौवन के उभार से गदराया हुआ शरीर और विहँसता चेहरा! इसी मनोरमा से शिवनाथ ने शहर में आकर प्रेम किया था—अपने अस्तित्व को तिल-तिल मिटाकर, अपनी वास्तविकता और अपने उद्देश्य को, जिसे लेकर वह गांव से शहर में आया था, उसे भुला कर ऐवज़ में मदहोशी लेकर प्रेम किया था—विश्वास और आशा की भावनाओं में सँजोकर उसने भविष्य का निर्माण एक नये तरीक़े से किया था। आज उन सब भावनाओं और कल्पनाओं में कहा सार रहा है—कहां·········?

शिवनाथ अपने गांव से पढ़ने के लिये जब शहर में आया था तो वह अपनी परिस्थितियों से अच्छी तरह परिचित था। जिस विपन्न और साधन-रहित वातावरण में वह पला था, उसमें रोमांस की कतई गुंजाइश नहीं थी—सम्भवतः इसकी कभी उसने कल्पना भी नहीं की थी। आरम्भ से ही उसे अपने भविष्य का अपने हाथों निर्माण करना पड़ा था। माता और पिता का साया बचपन में ही उसके सिर पर से उठ गया था। उनकी मृत्यु के बाद उसे कुछ दिन अनाथ बने डोलते बिताने पड़े थे तभी एक दूर के सम्बन्धी ने उसे गांव में अपने पास रख लिया और इस तरह शिवनाथ परिस्थितियों के अस्थिर पालने में डोलता विद्याध्ययन की ओर बढ़ा—गांव की पाठशाला, तहसील के मिडिल स्कूल, हाईस्कूल

और फिर ज़िले के इण्टर कालिज की दीवारों को लांघता शहर की यूनीवर्सिटी में आ पहुंचा था। और यहीं से शिवनाथ का नव-निर्माण हुआ था—नई आकांक्षाओं ने आगे-आगे बढ़ कर उसे प्रेरणा दी थी और सफलता ने उसका स्वागत किया था। शहरी-जीवन के प्रथम और द्वितीय वर्ष उसके लिये विशेष महत्व के नहीं रहे थे—पढ़ना और पढ़ाना और पढ़ने से यदि मन ऊबे तो शहर से बाहर एकान्त में टहलने निकल जाना। उसके मित्रों की संख्या नहीं के बराबर थी। कारण कुछ संकोच था और कुछ एकाकी प्रवृत्ति। शिवनाथ अपने इस एकाकी, शान्त जीवन से सन्तुष्ट था और जिस उद्देश्य पूर्ति के लिए गांव छोड़कर वह शहर की एक गन्दी, सील भरी कोठरी में आ बसा था, उस ओर दृढ़ता से आगे बढ़ा चला जा रहा था। कभी-कभी वह अपने संघर्षों से भरे जीवन के विषय में सोचता था और मुस्करा देता था। कभी कभी आत्मचिन्तन के क्षणों में वह अपने दैनिक जीवन की तुलना श्रीसम्पन्न विद्यार्थियों के दैनिक जीवन से भी करने लगता था। उन क्षणों में उसे अपनी कर्मण्यता से सन्तोष मिलता था—पढ़ना, ट्यूशन करना और टहलना। शिवनाथ अपने जीवन से सन्तुष्ट था।

उस वर्ष बी० ए० की परीक्षा में शिवनाथ सर्वप्रथम रहा और इस कारण उसका आर्थिक सकट कुछ कम हो गया। उसने एम० ए० 'ज्वाइन' किया और नये जीवन में नई उमंगों के साथ प्रवेश किया। विद्यार्थीगण उसकी वेशभूषा की ओर देखते थे और हँसते थे—गंवारू कपड़े, उटंगा-सा पाजामा, हाथ से धुला हुआ गाढ़े का कुर्ता, मैली, धुमैले रंग की टोपी और नंगे पैर! लेकिन इस सादगी के अन्दर भी जो उसका व्यक्तित्व था—सुन्दर चेहरा, गेहुँआ रङ्ग, बड़ी-बड़ी दीप्त आंखें, प्रशस्त ललाट और स्वस्थ शरीर—उससे प्रभावित हुए बिना देखने वाला नहीं रह सकता था। उसकी आंखों में एक सम्मोहन शक्ति थी, जो दूसरे को निकट खींचती थी

और बातचीत करने के लिए विवश करती थी। लेकिन अपने ध्येय की पूर्ति में संलग्न शिवनाथ अपनी इस शक्ति से अनभिज्ञ था। इसी बीच कॉलेज में उसका परिचय मिस मनोरमा से हुआ। मिस मनोरमा से परिचय भी कुछ विचित्र ढंग से हुआ था। एक दिन वह क्लास में नहीं आया था और उसकी सीट पर मिस मनोरमा ने पेन्सिल से खिंचा हुआ उसका एक स्केच आलपीनों से फिट कर दिया था। उस चित्र के नीचे शीर्षक दिया हुआ था—'जेल की आबाद बस्ती से छूटा हुआ।' दूसरे दिन शिवनाथ ने टेबिल पर से उस पेन्सिल स्केच को उतार लिया, बोला कुछ नहीं। एक दिन शिवनाथ के एक सहयोगी ने बतलाया कि वह पेन्सिल स्केच मिस मनोरमा का बनाया हुआ है और उसे चाहिए कि वह मिस मनोरमा से इस बदतमीज़ी के लिए क्षमा प्रार्थना करवाये। लेकिन शिवनाथ मौन ही रहा। इसके बाद भी मिस मनोरमा शरारतों से बाज न आई—कई बार अपनी सहेलियों के सामने उसने शिवनाथ की नक़ल उतारी। लेकिन वह शांत ही रहा—एक दम तटस्थ! मिस मनोरमा को शिवनाथ की इस खामोशी से पश्चात्ताप हुआ हो, ऐसी बात नहीं। हां उसे एक खीझ शिवनाथ के इस शान्त व्यवहार से अवश्य हुई। अभी तक उसने देखा और अनुभव किया था कि बिना बात के युवक उसके पीछे पीछे भागते हैं—सहयोगी उससे बातचीत के लिए अवसर ढूंढ़ते हैं और कुछ अधिक मनचले युवक उसे देखकर कवि बनने या प्रेमाग्नि में तड़पते प्रेमी का स्वांग भी करने लगते हैं। इन्हीं सब बातों की आशा एक बार शिवनाथ के शान्त सागर से जीवन में हिलोरें पैदा करने—उसे उद्वेलित करने के लिए उसने की थी। लेकिन उसे सफलता न मिली थी और यही उसने अपना अपमान अनुभव किया था। उसने शिवनाथ को घमण्डी कहा था—यहां तक कि उसे गंवार कहने से भी नहीं चूकी थी।

लेकिन वह आज यहां एकान्त में बैठ जब अपने विगत का सिंहावलोकन कर रहा है, वह मनोरमा के विषय में यूं नहीं सोचता। वह सोच रहा है मिस मनोरमा के शब्दों को लेकर — उसके वचनों को सामने रखकर! मिस मनोरमा से उसने प्रेम किया था, अपना अस्तित्व उसमें विलीन कर दिया था। आरम्भ में मिस मनोरमा ने इस छेड़छाड़ से आगे बढ़ कर स्वयं शिवनाथ से बातचीत की थी, और वह अप्रत्याशित रूप से शिवनाथ की ओर आकृष्ट भी हुई थी। मिस मनोरमा सम्पन्नता के जिस वातावरण में पली थी और रहती थी, उसमें ऐसा नहीं कि शिवनाथ जैसे सुन्दर या मेधावी युवक उसके सम्पर्क में न आये हों, लेकिन शिवनाथ के व्यक्तित्व में जो एक निजत्व की गहरी छाप थी, एक विशेष आकर्षण, उसकी अवहेलना उसके बस से बाहर की बात थी। शिवनाथ के सम्पर्क में आकर मिस मनोरमा अपनी पहली पराजय को भूल गई। उधर शिवनाथ ने मिस मनोरमा के सम्पर्क में आकर सब कुछ नया अनुभव किया। उसने महसूस किया कि उसके दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन होता जा रहा है और कल वाला उसका निजत्व तेजी से नष्ट हो रहा है। वह चौंका, लेकिन सम्हल नहीं सका। उसके सदा जीवन और वेशभूषा में परिवर्तन आ गया। उसके सामने भावनाएं प्रभात वेला में नई खिली विहंसती कलियों-सी विकसित हो उठीं और वह सिहर उठा। एकांकीपन की प्रवृत्ति डोल गई और वह किसी के संसर्ग की अधिकाधिक चाह करने लगा। उसे लगा कि उसका आज तक का विगत बह गया है। जहां उसकी पोशाक में परिवर्तन हुआ, वहां उसका स्वभाव भी बदल गया। इस परिवर्तित शिवनाथ को मिस मनोरमा ने देखा और मुस्करा दी। यह उसकी विजय का दिन था। आरम्भ में मनोरमा शिवनाथ की ओर खिंची थी, लेकिन अब शिवनाथ मनोरमा की ओर खिंचने लगा। दिन

पंख लगा कर उड़ने लगे—कल्पना सावन की रिमझिम में नाचते मोर सी थिरक उठी प्रेम का वेग बढ़ा और दोनों बेसुध बह चले। एक दिन शिवनाथ ने मनोरमा के दोनों हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा—'तुम मेरे जीवन की गति हो!'

और मनोरमा ने शिवनाथ के और निकट आते हुए मुस्करा कर कहा था—'तुम मेरे जीवन के कम्पन हो!'

तब शिवनाथ ने उसे अपने में समेट लिया।

× × × ×

एम० ए० का प्रथम वर्ष निकल गया। दोनों की भावनाएं बल पकड़ती गईं। शिवनाथ डूबता गया। लेकिन सुख और आनन्द के उन दिनों को उसने किसी निराशा या पतन का द्योतक नहीं समझा; शायद उन परिस्थितियों में ऐसा सोचने की कभी उसने ज़रूरत महसूस नहीं की थी।

लेकिन मिस मनोरमा के प्रेम में वह आवेग न था। वह सतर्क थी और अपनी परिधि में चल रही थी। शिवनाथ को लेकर वह अपने भविष्य का न तो कोई चित्र खींचना चाहती थी और न उसके मन में कभी ऐसी कल्पना ने ही जन्म लिया था। शिवनाथ उसके लिये 'वर्तमान था, 'भविष्य' नहीं। और उसके आगे वह उसके विषय में सोचना भी नहीं चाहती थी। मिस मनोरमा के स्वभाव में धनिक-वर्गोचित एक लापरवाही थी और थी अहमन्यता, सम्मान लिप्सा और विलासिता! शिवनाथ आरम्भ में मिस मनोरमा के स्वभाव को पढ़ नहीं सका और जब उसे यह बातें दृष्टिगोचर हुईं तो वह बहुत आगे निकल चुका था जहां से कम से कम शिवनाथ जैसे कल्पना-शील, भावना-प्रधान व्यक्ति के लिये लौटना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था।

× × × ×

शिवनाथ ने टीले पर पड़े एक गोल गोल पत्थर को उठा लिया और हृदय पर अनुभव होते बोझ को हल्का करने के लिये पत्थर को अन्धेरे में फेंक दिया। दूर शहर की रोशनी मद्धिम पड़ गई थी और कुछ थोड़े से बल्ब उसके सामने अब टिमटिमा रहे थे—अनाकर्षक, धुन्धले! एक दो-तीन—उसने एक के बाद दूसरा पत्थर उठाया और अन्धेरे में फेंकता रहा। लेकिन वह हृदय में उठते भावों को दबाने में असमर्थ रहा। मन कह रहा था—'अरे शिवनाथ, तुम्हारा कल वाला निजत्व नष्ट हो चुका है। कल की घटनाएं आज विगत हैं और अब तक तुम निज की इतनी पूंजी खो चुके हो कि भविष्य तुम्हारे लिये सूना हो गया है—तुम दिवालिया हो गये हो। शिवनाथ, तुम अपने कल पर न सोचो, क्या रखा है अब सोचने में। वह एक जुआ था, जिसमें तुमने अपना सर्वस्व लगा दिया और तुम हार गये।'

शिवनाथ के चेहरे पर अवसाद आकाश पर छाई हुई घटा से भी घना होकर फैल गया। वह बुदबुदाया — 'मैं पागल था—मैं पागल हूँ। मैंने जीवन में खोया ही खोया है, पाया कुछ भी नहीं।'

फिर वह अन्धकार में एक टक देखने लगा और उसे प्रतीत हुआ—सोचना अब असह्य होता जा रहा है। लेकिन मनोरमा—कल की घटनाएँ—कल्पना—भविष्य!

उसे आशा नहीं थी कि उसे विश्वास और प्रेम के बदले में इस कटुता का—इस अपमान और इस निराशा का सामना करना पड़ेगा।

उसी शाम की बात थी। शिवनाथ ने मिस मनोरमा के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा था। उसने मिस मनोरमा के गले में अपनी बाँहें डालते हुए कहा था—

'मिनी, हमें अपनी मित्रता को पवित्र सामाजिक बन्धन द्वारा दृढ़ कर लेना चाहिये।'

मिस मनोरमा ने धीरे से शिवनाथ की बांहों को गले से छुड़ाते हुए ग़ौर से एक बार उसकी ओर देखा। शिवनाथ की आंखों में निश्चय था और अपने प्रश्न का उत्तर पाने की आतुरता थी। मिस मनोरमा को अपने कर्तव्य का निश्चय करने में विलम्ब नहीं लगा। उसने मधुर मुस्कान अपने चेहरे पर बिखेरते हुए कहा—

'मिस्टर शिवनाथ, अभी हम एक दूसरे को पहिचान ही कहां पाये हैं। और फिर अभी इतनी जल्दी भी क्या है?'

शिवनाथ उसके अभिप्राय को नहीं समझ सका। उसने फिर आग्रह किया—

'नहीं मिनी, हमें जिस समाज में रहना है उसके नियमों का पालन आवश्यक है। विवाह हमारे मिलन को पवित्र बना देगा। मैं समझता हूँ अब यह हमारे लिये आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है।'

मिस मनोरमा यह बातें सुनने और उत्तर देने के लिये पहले से तैयार खड़ी थी। उसने पैनी चुभती आंखों से एक बार शिवनाथ के हृदय की तह तक पहुंचने की कोशिश की। फिर सम्हल कर बोली—
'मिस्टर शिवनाथ, विवाह के सम्बन्ध में मेरे निराले विचार हैं। तुम मेरे मित्र हो, मैं समझती थी कि तुम सदा मेरे साथ एक मित्र बन कर ही रहोगे। लेकिन मैं देखती हूँ, तुम में दूसरों को ग़ुलाम बनाने की प्रवृत्ति प्रबल है। सुनो, मैं विवाह को ग़ुलामी समझती हूँ।'

शिवनाथ अवाक् हो रह गया। उसे विश्वास न हो रहा था कि यह सब कुछ वही मनोरमा कह रही है जिसे वह स्नेह व करुणा की देवी समझे हुए था।

मिस मनोरमा ने अपनी मुद्रा को दृढ़ बनाये हुए फिर कहा —

'देखो मिस्टर शिवनाथ, मुझे ग़लत मत समझना। मैं जानती हूँ कि इन बातों से तुम्हारे हृदय को भारी धक्का लगा होगा, लेकिन मैं इसके लिये विवश हूँ—मुझे तुम्हारे प्रति हार्दिक सहानुभूति है।'

शिवनाथ इसके उत्तर में क्या कहता—कह भी क्या सकता था! प्रेम तो दो हृदयों की भावना के मेल का नाम है लेकिन जहां विचारों में मौलिक भेद हो, वहां क्या प्रेम और क्या उसके प्रति आस्था!

शिवनाथ मुँह लटकाये चुपचाप मिस मनोरमा के यहां से चला आया। अपने कमरे में उसका मन नहीं लगा। जितना वह सोचता था, उसकी भावनाएं रीती और सूनी होती जा रही थीं; विवेक उसका इस आघात से तिमिराच्छन्न हो गया था। निराशा की प्रवृत्ति उसे मृत्यु की ओर धकेल रही थी। शिवनाथ तब और शहर में टिक नहीं सका था; अज्ञात शून्य में लीन होने के लिये वह शहर से डग भरता हुआ यहां इस नीरव, बीहड़ स्थान पर आ पहुंचा था।

× × × ×

शिवनाथ ने देखा, प्राची में हल्की लालिमा फैल चली है। चिड़ियां चीं—चीं—चीं करती फुर—फुर कर उड़ने लगी हैं और काले—काले बादल परास्त हुए सैनिकों से विपरीत दिशा में सर पर पांव रखकर भागे चले जा रहे हैं। उसने सोचा, रात के बाद दिन और दिन के बाद रात, यह प्रकृति का एक शाश्वत नियम है। प्रकृति का पाठ कर्मण्यता है और इसके सिवा सब कुछ निरर्थक है। शिवनाथ के अन्दर फिर एक प्रेरणा काम करने लगी थी—

'मैं गांव से मनोरमा के लिये नहीं, अपने विकास के लिये आया था और वह कार्य अभी अधूरा है। मनोरमा क्या.........ऊंह!'

और वह फिर डग भरता हुआ शहर की तरफ़ चल दिया।

श्यामलता

मिसेज़ श्यामलता ने अपने आलीशान सुसज्जित कमरे में टँगे अपने भूलिमण्डित विशारद के प्रमाणपत्र को देखा तो बिना किसी हिचकिचाहट के तन्मयता से अपनी क़ीमती जारजेट की साड़ी के पल्लू से ही उसे झाड़कर साफ़ करने लगीं। लेकिन ज्यों–ज्यों वे पल्लू से प्रमाणपत्र के फ्रेम और कांच को साफ़ करती जा रही थीं। मन अवसाद से भारी, पानी बरसने की पहली उमस–सा, होता जा रहा था। उनका क्षण भर पहले मधुर लय में किसी फिल्मी संगीत का गुनगुनाना बन्द हो गया था और उदासी बवंडर की धूल की पर्त-सी, उनके चेहरे पर छा गई थी। उन क्षणों में उनका चेहरा देखकर अनजान भी कह सकता था कि मिसेज़ श्यामलता की प्राकृतिक उत्फुल्लता नष्ट हो गई है और उसकी जगह विषाद की गहरी कालिमा ने ले ली है। उनका हाथ जिसमें वे साड़ी का पल्लू थामे हुए थीं अब भी फ्रेम पर फिर रहा था लेकिन उनका मन बाज पंछी की तरह लम्बी उड़ान भरता वर्तमान से अतीत में जा लगा था, उनकी आंखें अतीत की कल्पना में तैरने लगी थीं।

मिसेज़ श्यामलता ने महसूस किया कि एक जड़ता उनके अन्दर शीशे-सा जमता जा रहा है, जिसके नीचे प्रेरणा और शक्ति दब गई है। उन्हें लगा कि वे इतने दूर की मंजिल से लौट रही हैं कि अब आगे एक क़दम भी रखना असम्भव है। वे अधिक खड़ी न रह सकीं, पास पड़े सोफे पर बैठ गईं।

मिसेज़ श्यामलता ने जो आज इतने बड़े घर की सबसे बड़ी बहूजी के पद का उत्तरदायित्व ग्रहण कर घर का काम अंजाम देने में जुटी रहती हैं—ज़मीदारी देखती हैं, नौकर चाकरों की चौकसी करती हैं, छोटी देवरानी और देवरों पर उचित और अनुचित का साया रखती हैं, और इस श्री-सम्पन्न् परिवार के अनुरूप उसकी पूर्वगत मर्यादा की सुरक्षा और वर्तमान व्याख्या में रत रहती हैं; दूर से इन बड़ी बहू जी के जीवन में घरके काम के अलावा कहीं भी कुछ ऐसा नहीं दीखता जहां नर्मी हो—जहां उत्तरदायित्व, लोक–लाज और मान–मर्यादा के सकरे दायरे से उपर कुछ उनकी आत्मा का सगा—उनका व्यक्तिगत रहा हो।

माना कि आज का उनका जीवन मशान-सा है, जो केवल एक सधी हुई गति से चल रहा है। लेकिन इसके अलावा भी उनका जीवन रहा है, जहां रस का संचय शहद के छत्ते–सा ही रहा है। और जहां मन की मनोरम कल्पना सावन में पहाड़ियों और मैदानों में लहराती हरियाली-सी सब्ज़ और उर्वरा रही है। आज जिस उत्तरदायित्व ने उन्हें अपने अतीत को भूलने और एक कठोर गृहस्वामिनी बनने के लिए विवश किया है अगर वे उसका उल्लंघन कर पातीं तो समाज से चुनौती के स्वर में कहा होता—अरे भाई, मैं मिट्टी की निर्जीव मूर्ति नहीं हूँ कि जिस किसी की जहां कहीं मन चाहे अपने बड़प्पन को—समाज का सहारा लेकर स्थापित कर दे। आखिर मुझ में भी जीवन है—इस मांसयुक्त

हड्डियों के ढांचे के नीचे भी आत्मा का वास है। आखिर मेरी भी कुछ अपनी भावनाएं हैं। मेरी इच्छाएं भी काल्पनिक-चित्र खींचती हैं, उनमें यथाविधि रंग भी भरना जानती हैं और उस चित्र को साकार प्रस्तुत करना भी! इसी कारण मैं समाज को चुनौती देकर कहती हूं, मुझे यह पति, उनकी महिमामयी पारिवारिक मान-मर्यादा कुछ भी नहीं सुहाता। मेरे लिए उनकी चल और अचल सम्पत्ति का कोई मोह नहीं है। मेरे लिए यह वैभव आदि कुछ नहीं है—कहा न, कुछ नहीं है। मैं तो तत्काल इस विवाह, पति और ससुराल के पींजरे से उन्मुक्त हो अपनी अधूरी कल्पना में लौट जाना चाहती हूँ।

लेकिन मिसेज़ श्यामलता के लिए यह स्पष्टवादिता असम्भव थी। वे जिस सामाजिक वातावरण में पली थीं और जिस संस्कृति का उनकी मनोवृत्ति पर मुलम्मा चढ़ा हुआ था, उसमें मन की विवशता कर्तव्यपरायणता का विधान रचती थी। वहां परिवार की जीर्ण हो रही मर्यादा का संरक्षण ही एक सत्य था, जिस सत्य को अपने से परे टालने की बात ही नहीं उठती—जहां लोक लाज के आगे अपनापन कुछ भी नहीं माना जाता। उन विषम परिस्थियों में मिसेज़ श्यामलता के आगे केवल एक ही मार्ग था कि अपने विवेक को—अपनेपन को नष्ट कर निर्जीव, मशीन बन जांय।

मिसेज़ श्यामलता ने सोचते-सोचते घबरा कर आंखें खोल दीं और आज मैं सिर्फ एक मशीन बनकर रह गई हूं—जो एक सुनिश्चित गति से एक सीमा के अन्दर ही चलना जानती है।

इस विस्तृत संसार में हरेक के अपने स्वार्थ हैं—अपनी कल्पनाएं हैं और हरेक अपने सपनों को—अपनी कल्पनाओं को पूरा उतरते देखना चाहता है। लेकिन जो सबल है, जिसके मनमें दृढ़ता और हाथों में शक्ति है वह

इस को मिटाकर इसकी भावनाओं को कुसुम-दलसी रौंदकर सफलता पा जाता है और जो उसकी महत्त्वाकांक्षा के शिकार हुए हैं उनका फिर अस्तित्व ही कहां! वे मिट जायं या एक कोने में मुर्दे की तरह पड़े रहें, कौन पूछता है ? मेरी ही लो न, पापा चाहते थे कि लड़का कुछ भी हो, पढ़ा लिखा हो या निरक्षर भट्टाचार्य, लेकिन विवाह अमीर घराने में हो; जहां मोटरें हों, बँगले हों, ज़मीन-जायदाद हो और सबसे बड़ी बात यह कि बात बातपर नौकर चाकरों का जमघट सा लग जाता हो। और किस क्रूरता से—किस अमानुषिकता से अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए मेरी हत्या कर दी गई !

मिसेज़ श्यामलता ने चिहुंककर पसीने से तर अपने हाथ को माथे पर से हटा लिया। उन्हें लगा कि आज का घरका सारा काम अभी वैसा ही पड़ा हुआ है और वह आकर यहां इस एकान्त में निठल्ली बनी उस मरे हुए कल पर सोच रही हैं जिसका अन्तिम संस्कार हुए मुद्दत हुई। लेकिन फिर भी वह जहां बैठी थीं उससे एक तिल भी न डिग सकीं। भावना प्रबल थी और वे उसके तेज़ बहाव में तिनके सी बही चली जा रही थीं। उन्होंने सोचा—

क्या जीवन है ? जिस व्यक्ति को ज़बरदस्ती पति की संज्ञा देकर हाथ सौंप दिया, उसे मन किस प्रकार स्वीकार करले ? किस प्रकार उस नाम की गरिमामें अपने अस्तित्व को डुबो दे। आज मेरे विवाह को पांच वर्ष हो गये। लेकिन क्या एक दिन के लिए भी मैं अपने हृदय के स्पन्दन को—अपनी कल्पनाओं को उनमें समन्वित कर पाई ? और क्या उन्होंने ही एक क्षण के लिए अपनत्व प्रदर्शित किया है। यह पारिवारिक जीवन सिर्फ ऐसा दीखता है कि एक नाटक हो।

वे सोच रही थीं—वैभव के लिए ही तो मैं बेच दी गई। आज मुझमें और एक वेश्या में क्या अन्तर है। एक वेश्या अपना शरीर बेचती है और वैभव खरीदती है। और मैं···

मिसेज़ श्यामलता को लगा कि इस विवेचना के साथ ही उनके अन्दर की कटुता अति प्रबल हो उठी है और उनका मुँह ऐसी कड़वाहट से भर गया है कि दम घुटा जा रहा है। वे इस अप्रासंगिक अनाशक्ति से मुक्ति चाहती हैं। चाहती हैं कि निवृत्ति मिले तो स्वस्थ हो लें। कहां दल-दल में फँस गयीं ? जिस जीवनका, जिन कल्पनाओं का और जिन कामनाओं का आज कोई सूत्र शेष नहीं बचा है उस जीवन के बारे में क्या सोचना क्यों बिना बात सिर खपा कर सिर का दर्द मोल लेना ?

और वे फिर जैसे अपने से ही बुद बुदायीं—यह हिमाक़त है—हिमाक़त !

लेकिन हिमाक़त कह देने से ही उन्हें शान्ति नहीं मिली। जैसे ही उन्होंने अपनी ग्रीवा मोड़ कर प्रमाण पत्र की ओर देखा फिर वही असीम वेदना जाग उठी—सामने एक युवक का चेहरा आ गया।

विवाह के बाद की बात है। मिसेज़ श्यामलता जिस समय अपनी इस वैभव की दुनियां, ससुराल में आयीं, तो आश्चर्य उनकी आंखों से, अधिक पके हुए आम से रस निकलते रस–सा रिसा पड़ रहा था। इस घर को प्रत्येक चीज़ को उन्होंने कुतूहल से देखा था और वे महीनों जिज्ञासाकी भावनासे ओतप्रोत रही थीं। घर में कुछ काम तो था नहीं महरिन चौका–बर्तन करती थी—महाराजिन रसोई सम्हालती थी और अनेक नौकर–चाकर ऊपरी काम देखते थे। सासने तब एक दिन सदय होकर कहा—बेटी, तुम चाहो तो अपनी अधूरी पढ़ाई को फिर से आरम्भ कर दो और मिसेज़ श्यामलताने सिर हिलाकर अपनी सम्मति दे दी थी।

मिसेज श्यामलता की उम्र उस समय बीस वर्ष की थी। लेकिन अपनी कमज़ोर देहयष्टिके कारण वे ऐसी दिखती थीं जैसे सोलहवीं पार कर रही हो ऊँची उठी हुई नासिका, लम्बा मुँह, मुसकराते पतले ओंठ

और बड़ी बड़ी आंखें ! इनकी पूरी आकृति में यदि कोई विशेष आकर्षण था तो उनकी बड़ी बड़ी आंखें थीं, जो सहज ही अपनी ओर दूसरे को आकृष्ट कर लेती थीं उन आंखों में स्निग्धताका अतुल भण्डार था और एक ऐसी कोमलता थी, जो अपने अन्दर के व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करती थी। उनका मझोला क़द और सांवला रंग था। लम्बी केशराशि उनकी पीठ पर पड़ी रहती थी, जिसके बिखरे हुए बालों की दो एक लटें बरौनियों पर हवा में डोलतीं भौरों–सी मँडराया करती थीं। मिसेज़ श्यामलता को आरम्भ में अपने साज–सिंगार का बड़ा शौक था। अक्सर वे आदमक़द शीशे के सामने खड़ी अपने बालों से खेलतीं रहती थीं कभी वे बालों को एक दम पलट कर बस एक रेशम के फीते से गिरह लगा देती थीं और कभी वे बीच से मांग निकालती थीं और काले रेशम के धागों से कस कर लम्बी वेणी बनाती थीं। उनके कानों में छोटे छोटे पक्के मोतियों के अंगूर के गुच्छे के समान झुमके रहते थे और गले में पक्के बड़े बड़े मोतियों की माला जिसके बीच में एक बड़ा हीरा आकाश में तारों के बीच में चमकते पूर्णिमा के चन्द्रमा सा दमका करता था। इनके अतिरिक्त उनके हाथों में दो दो नीलम की अँगूठी और हाथों में दो दो हीरे की जड़ाऊ चूड़ियां पड़ी रहती थीं। बदन पर उनके फ़ीरोज़ी रँग की साड़ी रहती थी, जिसे वे बहुत पसन्द करती थीं और उसके अनुरूप ही उनका ब्लाउज़ रहता था।

मिसेज़ श्यामलता के सामने जिस नवयुवकका चेहरा साकार हो गया था उसके साथ ही उनके जीवन के परिवर्तनकी कहानी सम्बद्ध है। वे इस बातको गत पांच वर्ष के आत्मचिन्तन और अनुभव के आधारपर अच्छी तरह से समझ गयी हैं कि वे दूसरों को भुलावे में रखने के लिए प्रवंचना से काम भले ही ले लें लेकिन वे अपनी आत्मा को नहीं छल

सकतीं। उसके सामने तो उन्हें बावन तोला पाव रत्ती के भावसे ही अपनी कैफ़ियत देनी होगी—वहां न अतिशयोक्ति काम दे सकती है और न अन्य कोई दुराग्रह। और इसीलिए आजकी विपरीत परिस्थितियों में भी, जिनमें उन्होंने अपने को सम्पूर्ण रूप से बदल डालने का दावा किया है वे हलके मन से मन ही मन कह लेती है—मैंने मदहोश होकर उनसे प्रेम किया था। मैं उस सुमधुर स्मृति को नहीं भूल सकती।

मिसेज़ श्यामलता ने सोचा—एकबार जैसे ही पढ़ाई आरम्भ करने की सास के सामने रुचि प्रकट की नहीं कि एक सप्ताह के भीतर ही पढ़ाई की व्यवस्था हो गयी। इसी कमरे में पढ़ने का प्रबन्ध कर दिया गया था। एक से एक बढ़कर सजिल्द कापियां, पेंसिलें और तरह तरह की स्टेशनरी का सामान जुटा दिया गया था। और फिर एक दिन मास्टर की भी नियुक्ति हो गई थी। जिस दिन पहले पहल पढ़ाने के लिए वे घर में आये, सासने इस एकान्त कमरे की ओर संकेत कर कहा था—विश्वनाथजी, यहीं पढ़ाया करें।

और फिर दरवाज़े की ओर मुड़कर कहा था—बड़ी बहू, यह तुम्हारे मास्टरजी आ गये। लो, इनसे समय निश्चित कर लो। किस समय पढ़ा करोगी, क्यों……?

देखा कि जो युवक खड़ा है वह संकोच से गड़ा जा रहा है, आंखें हैं कि ऊपर ही नहीं उठतीं। और उस समय अपने शरीर की सारी चपलता को संयत कर कहा था—मास्टर साहब आइये, बैठिये।

और मेज़ के दूसरी ओर पड़ी कुर्सी पर बैठने का संकेत कर दिया था वे बैठ गये फिर भी वे कुछ कह नहीं पाये थे। सम्भवतः सोचते रहे हों, किस प्रकार बात आरम्भ की जाय। तब मिसेज़ श्यामलता ने ही कहा था—मास्टरजी मैं इसी वर्ष विशारद की परीक्षा में बैठना चाहती हूँ महिला विद्यापीठ की विद्याविनोदिनी परीक्षा पास कर ली है।

मास्टरजीने उनकी बात के सिलसिले में शायद कुछ नहीं कहा। वे केवल इतना कह कर उठ गये थे—कल मैं आपके कोर्स की पुस्तकों की तालिका बना कर दे दूँगा। आप उन्हें मँगवा लें।

इस पर मिसेज़ श्यामलता ने कहा था—यहां किसे पुस्तकों में रुचि है! पुस्तकें तो आपको ही लानी पड़ेंगी—कहते कहते वे मुसकरा दी थीं।

वे उठ कर चले गए। दूसरे दिन निश्चित समय पर आये और जैसा कि उन्हें बतला दिया था वे कमरे में आकर बैठ गए थे। जब मिसेज़ श्यामलता कमरे में आयीं तो देखा मास्टर जी के पास ही वे भी बैठे हुए हैं। वे दरवाज़े के पास आकर ठिठक गयीं। वे कह रहे थे—यह गाँव वाले एक ही नालायक़ होते हैं। अगर मेरा बस चले तो एक सिरे से गोली से उड़वा दूँ। विश्वनाथजी, अगर आपको चोर और झूठों को कहीं शत-प्रतिशत देखना हो तो एक दिन मेरे साथ मोटर में हमारे गाँव चलिए। आपको इन मेमने से सीधे कहलाने वाले गाँववालों के वह करिश्मे दिखलाऊँ कि आप दाँतों तले अँगुली दाब लें।

मिसेज़ श्यामलता जानती थीं कि वे शराब पिये हुए हैं और अपने होश में नहीं हैं। मास्टर जी का बुरा हाल था। वे एक हाथ से रूमाल पकड़े हुए उससे नाक और मुंह ढके हुए थे। शायद शराब की बदबू के मारे उनका दम घुटा जा रहा था। उनसे शीघ्र छुटकारा पाने की आशा से वे उनकी बातों का सिर हिला हिलाकर समर्थन करते चले जा रहे थे। अब और बिना एक क्षण का विलम्ब किए मिसेज़ श्यामलता मास्टर-जीके पास जा खड़ी हुई थीं। उन्होंने ज्यों ही देखा, यह कहते हुए उठ खड़े हुए थे—अरे, आओ तुम यहां बैठ कर पढ़ो...पढ़ो...पढ़ो मैं भी कहां बहक गया था।

और उठ कर अपने गले की टाई ढीली करते हुए अपने कमरे में चले गये थे। उनके कमरे में से जाने के बाद फिर वही सुपरिचित मुसकान

श्यामलता के अधरों पर आ लगी थी। उन्होंने कहा—मास्टर जी, आप पुस्तकों की तालिका बना लाये?

उन्होंने उत्तर में जेब से तालिका निकाल कर उनके सामने रख दी। बोले इन में से जिन पर लाल पेन्सिल से चिन्ह बने हुए हैं उन्हें खरीदने की जरूरत नहीं है। वे मेरे पास मौजूद हैं बाक़ी आप बाज़ार से मँगा लीजिए।

मिसेज़ श्यामलता ने तालिका में दी हुई पुस्तकों का मूल्य जोड़ कर कहा था—मैं अभी आपको रुपये दिए देती हूँ, कल जब आप आयें, किताबें लेते आइएगा।

सोचते सोचते मिसेज़ श्यामलता की सोचने की गति में फिर हलका सा धक्का लगा लेकिन इस बार उन्होंने कोच [illegible] से उठने का प्रयास नहीं किया वैसे ही विचार मग्न [illegible] अतीत से खेलती सोच रही थीं · इस तरह [illegible] हुआ।

फिर लालसा भरे स्वर में हाथ में से यकायक असावधानी से छूटे हुए पंछी की तरह बोल उठीं—आह, कितने सुखद दिन थे। दिन आते और जाते पता नहीं लगता था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे दिन पतंग हवा के रुख में उड़ते चले जा रहे हैं। वे जिस समय पढ़ाने के लिए आते थे हृदय हलके स्पन्दन से भर जाता था।

फिर करवट बदलकर सोचने लगीं—कुछ दिन बीतने के बाद ही मैंने महसूस किया था कि जैसे जैसे उनके आने का समय होता जाता था; उनकी प्रतीक्षा से हृदय प्रभात बेलामें अपनी समस्त पँखुड़ियां खोले हुए गुलाब के फूल सा विहँस उठता था। जब तक वे मेरे सामने रहते थे मैं अपनी सारी मानसिक यातनाएँ भूल जाती थी। पति के मधुचक्र की भयानकता भूल जाती थी; उनकी उन्माद-अवस्था भूल जाती थी; उनकी शराब की मदहोशी और अनर्गल बकवास भूल जाती थी। उन चन्द

घन्टोंमें मैं जैसे दूसरे ही लोक में विचरने लगती थी। वे जिससमय पढ़ाते थे उनके प्रशस्त उन्नत ललाट और शान्त बड़ी बड़ी आंखों की ओर ही मेरे नेत्र लगे रहते थे। मुझे जीवन एक कविता मालूम होती थी, ऐसी कविता जिसका प्रारम्भ और मध्य पूर्ण सुखान्त हो। जिस समय वे किसी पद्य की विवेचना करने लगते थे तो विषय से अधिक मेरा मन उनकी वाणी के अमृत पान में लगा रहता। उनके बोलने में एक विचित्र मिठास थी। एक ऐसी सम्मोहन शक्ति थी, जो दूसरे को सहज ही अपने वश में कर लेती है। मैंने एक बार फिर अनुभव किया था कि मैं तेज़ी से उनकी ओर खिंची चली जा रही हूं।

वे सजातीय ही थे और छोटे देवर से उनकी घनिष्ठता थी। अविनाश लल्लू [illegible] जी बनना पड़ा था। वैसे स्वाध्याय के अलावा [illegible] ग़रीब [illegible] तो क्या! लेकिन स्वाभिमान [illegible] उनमें कितना सबल था। एक दफ़ा उनके मुँह से मास्टर जी की ग़रीबी के विषय में कुछ असंगत निकल गया था, तो उन्होंने चोट खाए हुए सांप की तरह उग्र होकर कहा था—मुआफ़ कीजिए! यदि आप सोचते हैं कि आप बड़े आदमी हैं तो अपने लिए और अपने घर वालों के लिए होंगे। इससे आपको यह नहीं समझना चाहिए कि आप उसके द्वारा दूसरे के स्वाभिमान को—उसकी इज़्ज़त को ख़रीद सकते हैं। अगर आप ऐसा सोचते हैं तो भूल करते हैं। और मैं आपको बतला दूँ इस भूल के लिए आपको किसी दिन पछताना पड़ेगा।

उस समय अगर मिसेज़ श्यामलता उनके सामने न आ गई होतीं तो भगवान जाने क्या हो गया होता! मास्टर साहब की कड़ी बात सुन कर उनके पतिदेव के नथने क्रोध से कांप रहे थे, आंखें अङ्गारे-सी लाल हो गई थीं और निकट था कि क्या कुछ न हो जाय! उस समय उन्होंने

सिर्फ़ इतना कहा था —मेहरबानी करके मास्टर जी आप मेरे यहाँ आकर किसी के वाद-विवाद में न पड़ा करिए। आइए...आइए !

और वे श्यामलता के साथ कमरे में चले आए थे।

कमरे में पहुँच कर वे बोलीं—जब आप उनकी आदत जानते हैं तब आपको उत्तेजित नहीं होना चाहिए था।

वे चुपचाप सुनते रहे।

फिर बात को विस्तार देकर बोलीं—इस घर में हरेक आदमी के साथ अपने परिवार की अहमन्यता अतिक्रान्त रूप में लग्न है। छोटे से लेकर बड़े से बड़ा तक अपने सामने दूसरे को गाजर और मूली समझता है। मुझे ही इस कारण क्या कम तिरस्कृत होना पड़ता है।

यह सब मिसेज़ श्यामलता ने उनकी सहानुभूति पाने के लिए कहा था लेकिन उस समय उनका ध्यान उनकी बात की ओर नहीं था। उन्हें आकृष्ट करने के लिए और फिर कहा—मास्टर जी, आज आपको एक बात का वायदा करना होगा ?

और फिर मुस्कराकर अपनी बात का उत्तर पाने के लिए वे उनकी ओर देखने लगी थीं। उन्होंने चौंककर कहा—क्या ?

वैसे ही मुस्कराते हुए वे बोलीं—

यही, कि जो कुछ आज आपका उनके साथ झगड़ा हुआ है उसे आप भुला देंगे।

तब उन्होंने उन्मुक्त हँसी हँसते हुए कहा—आप भी खूब हैं। उसे आप झगड़ा कहती हैं। मैं इस बात में विश्वास करता हूँ कि हरएक मनुष्य की मनःप्रवृति दूसरे से भिन्न होती है ! और इस प्रकृतिप्रदत्त दृष्टि-कोण की विषमता के कारण प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार प्राप्त रहता है कि वह अपनी बात के आगे दूसरे को ग़लत समझे। इसी कारण यदि मिस्टर प्रकाश अपनी विशेष मनःवृत्ति के कारण ग़रीबों के साथ

गी हुई समस्याओं को नहीं देख पाते तो इसमें दोष उन बेचारों का या ? दोष तो उस वातावरण का है जिसमें उनके संस्कार पनपे हैं। अपनी ओर से आपको विश्वास दिलाता हूँ कि उन क्षणों के अलावा व प्रकाश बाबू के प्रति मेरे हृदय में कोई दुर्भाव नहीं है। आप यकीन खिए मेरे हृदय में कोई ईर्ष्या का भाव नहीं है।

मिसेज़ श्यामलता सोचने लगीं—उनके स्पष्टीकरण द्वारा मुझे कितनी शान्ति मिली थी। मुझे लगा कि एक अनमोल वस्तु जो मेरे हाथों लग गई थी, वह खोते खोते बच गई।

लेकिन उस दिन के बाद उन्होंने देखा उनमें भारी परिवर्तन हो गया है। पहले स्वतन्त्रता से वे देवर और उनसे बातचीत किया करते थे और अब अधिक से अधिक इस बात का यत्न करते हैं कि उन्हें किसी से बातचीत करने का अवसर ही न मिले। तीसरे पहर की चाय और शाम को सैर के लिए जाने के अवसर पर भी वे कोई न कोई बहाना करके खिसक जाते। घर में पढ़ाने आते तो एकदम कमरे में आकर आवश्यक किताबें लेकर बैठ जाते और पढ़ाई आरम्भ हो जाती। एक दिन पढ़ाते—पढ़ाते उन्हें देर हो गई। तब सासने आकर कहा था—विश्वनाथ जी, आज आप यहीं भोजन करलें और हम लोगों के साथ सिनेमा देखने चले चलें।

लेकिन उन्होंने एक मित्र के यहां शाम को निमन्त्रण की बात कह कर सास के दोनों आग्रह टाल दिए। मिसेज श्यामलता को उनका यह कटे कटे रहना अच्छा नहीं लगता था। वे एक बात जानती थीं कि उनके हृदय में उस दिन उनके अशिष्टतापूर्ण व्यवहार के कारण कोई ईर्ष्या का भाव न भी रहा हो लेकिन उन्होंने एक बात अवश्य बांध ली थी कि इन लोगों के साथ अधिक मेल जोल ठीक नहीं है। सम्भवतः सोचते रहे हों, जहां विचारों में सामंजस्य नहीं वहां मेलजोल कैसा ?

इस विषय को लेकर दो–एक दफ़ा उनसे भी ज़िक्र किया कि वे मास्टरजी के सामने अपनी स्थिति स्पष्ट करदें। लेकिन बात शराब के प्याले में ग़र्क़ हो गई। दिन फिर भी बीतते जा रहे थे।

मिसेज़ श्यामलता करवट लेटी थीं अब वे फिर सीधी कोचके हत्थों पर अपने पैर रखकर चित्त लेट रहीं। उनकी बेचैनी से एक बात साफ़ दिखती थी कि आज वे अपने अतीत को पुन: अपने स्मृति के पटल पर अंकित कर लेने के लिए यत्नशील हैं। वे फिर भावना में डूब गई थीं।

उन दिनों गर्मियां आरम्भ हो गई थीं। अनमनी–सी एक दिन अपने कमरे में मिसेज़ श्यामलता बैठी हुई थीं कि मास्टर साहब निश्चित समय से कुछ पहले उस दिन आ गए। उन्होंने खड़ी होकर प्रणाम किया। वे कुर्सी पर आकर बैठ गए। उस दिन बहुत उदास थे। उनके उतरे हुए चेहरे को देखकर समझ गईं। उन्होंने पूछा—आपकी तबियत ठीक नहीं दिखती। इधर मैं कई निनों से देख रही हूँ कि आपका स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। लेकिन ध्यान देना आवश्यक ही नहीं समझते।

इस दुनियां में कितने ऐसे हैं जो दैनिक क्रम के बीच में अपने स्वास्थ्य की ओर देख पाते हैं। वैसे मन से और तन से स्वस्थ रहना कौन नहीं चाहता ?

कहते–कहते वे रुक गए। सिर की पीड़ा के मारे उनका बुरा हाल था। उन्होंने दोनों हाथों से अपना सिर थाम लिया था और वे उसे दबाए चले जा रहे थे।

उनके कष्ट का अनुमान कर मिसेज़ श्यामलता विचलित हो गईं और बोलीं—आप किताब बन्द कर दीजिए और इस कोच पर लेट रहिए। मैं अभी बाम लेकर आती हूँ अब आप मेरे लिए कम से कम कुछ भी सोचने की कोशिश न कीजिए।

उन्होंने उनकी बात का विरोध नहीं किया, कोच पर लेट रहे। थोड़ी देर में सास को लेकर श्यामलता लौटी थीं। सामने कमरे में प्रवेश करते ही कहा—बिचारा इतना सीधा लड़का कि देखते ममता उमड़ती है।

फिर बहू की तरफ़ मुड़कर कहा था—अरी बड़ी बहू जा, अपने डाक्टर साहेब को टेलीफ़ोन कर दे कि तुरन्त आ जांय।

मिसेज़ श्यामलता ने तब लेटे लेटे अपने से ही प्रश्न किया—फिर क्या हुआ था?

और उनके सामने वह दृश्य आ गया था जब कि डाक्टर के परीक्षण करके चले जाने के बाद अर्द्ध रात्रि के समय अपने मास्टर जी को एक बार देखने की उनके अन्दर इच्छा प्रबल हो उठी थी और जिस कमरे में वे लेटे हुए थे, बिना किसी संकोच के वे चली गयी थीं। कमरे के अन्दर जाते ही उन्होंने स्विच आन कर दिया और बिजली के प्रकाश में उन्होंने देखा कि मास्टर जी अर्द्धोन्मीलित नेत्रों से सामने के शून्य की ओर देख रहे हैं। तब श्यामलता ने ही धीरे से आवाज़ लगायी थी—मास्टर साहेब!

मास्टर साहब बिजली का प्रकाश होते ही सम्हलने का प्रयास करने लगे थे श्यामलता की आवाज़ सुनकर वे चौंक उठे थे। वे साहस कर फिर बोली थीं—मैं आपको देखने आई थी।

मास्टर साहब पलंग पर उठ कर बैठ गये थे। मुस्कराते हुए बोले—आप मेरे लिए इतना श्रम उठाती हैं कि मुझे कृतज्ञता प्रगट करते हुए भी ओछापन मालूम होता है।

उस समय मिसेज़ श्यामलता ने अपने नेत्रों से चंचलता बखेरते हुए कहा था—आपको इस कृतज्ञता-प्रकाशन की बड़ी ज़रूरत मालूम होती है!

और वे कुर्सी खींचकर उनके पलंग के पास बैठ गई थीं। फिर न जाने किस प्रेरणा से कहा था—आप ज़रा लेट जाइए तो आपका सिर दाब दूँ।

उन्होंने एकबार संकोच से उनकी ओर देखा। मानो आंखों ही आंखों पूछा हो यह क्या उचित है? लेकिन मिसेज़ श्यामलता ने उनके इन विचारों को प्रबल नहीं होने दिया था दूसरे ही क्षण बोलीं—लेटिए न! मैंने कहा, ज़रा आपका सिर दाब दूं।

और उस एकान्त में वे बड़ी देर तक उनके सिरहाने बैठी सिर दाबती रही थीं।

मिसेज़ श्यामलता सोच रही थीं—और फिर परीक्षा के दिन आ पहुंचे थे। उन्होंने बड़े श्रम से पढ़ाया था।

सासने एक दिन पूछा—विश्वनाथ जी, बड़ी बहू पास हो जायगी!

तो उन्होंने उत्साह से कहा था—आप निश्चिन्त रहें यह अवश्य पास होगी।

और उनकी बात ही सत्य निकली थी। मिसेज़ श्यामलता ने फिर उठ कर प्रमाणपत्र की ओर देखा था और वे सोचने लगी थीं—एक दिन दोपहर के समय वे आये थे। परीक्षा खत्म हो चुकी थी और उनका पढ़ाने आना बन्द हो गया था। घर में उस समय सभी सो रहे थे। वे छत पर पड़ी एक कुर्सी पर आकर बैठ गए थे। जैसे ही नौकर ने उनको सूचना दी; पास जा पहुँची। हँसते हुए बोली—आज बहुत दिनों बाद आपके दर्शन हुए।

उन्होंने बड़े सधे हुए स्वर में कहा—मुझे आपसे कुछ बातचीत करनी है।

मिसेज़ श्यामलता ने मज़ाक किया—क्या कोई खास बात है?

उन्होंने कहा,—ऐसी कोई विशेष बात तो नहीं है लेकिन फिर भी मैं समझता हूं कि आपके लिए वह आवश्यक है।

मिसेज़ श्यामलता ने पास ही पड़ी दूसरी कुर्सी को खींचकर उस पर बैठते हुए कहा—कहिए।

वे एक क्षण तक सोचते रहे जैसे अपने अन्दर, जो कुछ कहना चाहते हैं उसके लिए सोच विचार कर रहे हों। फिर सम्हलकर बोले आप जानती हैं, आसपास, यहां वहां, यहां तक कि आपके निकटवर्ती सम्बन्धी भी मेरे और आपके सम्बन्धों के बारे में क्या कहते हैं?

मिसेज़ श्यामलता ने हँसकर बात का महत्त्व गौण करने के लिए कहा—कहने दीजिए। भला ज़ुबान किस किसकी रोकी जा सकेगी। जितना अपवाद को मिटाने की कोशिश करो, बढ़ता जायेगा। लेकिन मैं आपसे पूछती हूं इससे हमारी क्या हानि है?

मास्टर साहब ने तब मुसकराकर कहा था—सचमुच आप बड़ी भोली हैं। लेकिन मैं नहीं चाहता कि आपकी बदनामी हो। आप अपने परिवार के उच्च स्तर से नीचे गिरें। मैं आपका विकास और निर्माण तो देख सकता हूँ, विनाश नहीं। और इसी कारण आज मैं एक निर्णय के साथ आपके पास आया हूँ कि आपसे कह दूँ जिस लोकवाणी को मेरे यहां आने जाने के कारण बल मिल रहा है, उसे मिटाने के लिए मैं अब यहां नहीं आऊंगा—कदापि नहीं आऊंगा। मैं जानता हूं यह दुनियां कितनी कटु है और जिन व्यक्तियों द्वारा ऐसी श्रुतियों को जन्म मिलता है वे कितने भयावह कीटाणु हैं। फिर भी मैं अपने लिए उनकी विशेष चिन्ता नहीं करता—पुरुष हूं और उन्हें सहन भी कर सकता हूँ। लेकिन आपके लिए यह असम्भव है।

थोड़ी देर तक चुपचाप वे उनके चेहरे की ओर देखती रहीं कि उन्होंने कुर्सी पर से उठते हुए कहा था—मैं जारहा हूँ नमस्ते!

मिसेज़ श्यामलता ने देखा कि सूरज डूब चुका है और घना अंधेरा दरवाज़े के बाहर फैल गया है। उन्होंने एक ठण्डी सांस ली—और यों वह जीवन ख़त्म हो गया था।

मिसेज़ श्यामलता ने फिर कुछ उत्तेजना के स्वर में कहा—मास्टर साहब...

फिर अट्टहास कर उठी—आप मुझे विनाश से बचाना चाहते थे। आप मेरा विकास और निर्माण चाहते थे और आज...

मिसेज़ श्यामलता ने अनुभव किया कि वे कमज़ोरी के कारण बेहोशी के नीचे दबती चली जा रही हैं।

बड़ी बहू के अट्टहास और ज़ोर ज़ोर से बोलने के स्वर को सुन कर सास और देवरानियां लपकी हुई उस कमरे में आयीं और स्विच आन कर देखा कि घर की बड़ी बहू जी आंखें बन्द किए कोच पर लेटी हुई हैं—चेहरे पर उनके मुर्दनी छाई हुई है और अवयव शिथिल पड़ गये हैं।

सास ने घबरा कर बड़ी बहू के माथे पर हाथ रखा मिसेज़ श्याम-लता उस समय बेहोश तन हो चुकी थीं।

जीवन नाथ

जीवन आज जब ज़रा जल्दी आफ़िस के कार्य से अवकाश पा गया तो वह नित्य की तरह घर की ओर न मुड़ कर बाज़ार की तरफ़ चल दिया उसने लम्बे दूर तक फैले बाज़ार में दो चक्कर लगाये, इसलिये नहीं कि उसे कुछ काम था बल्कि इसलिये कि उसे इस तरह चलना–फिरना भला लग रहा था। महीनों से उसने अपने शहर के इस बड़े बाज़ार के दर्शन तक नहीं किये थे। आफ़िस में उसकी टेबिल पर लगी, खलिहान में ढेर सी पड़ी गेहूँ की बालों की सी फ़ाइलों और बड़े साहब की घुड़कियों के कारण इतना समय ही कहां मिलता था कि शाम को ज़रा इस बड़े बाज़ार की रौनक़ को भी देख लिया करे। जिन परिस्थितियों में से उसका जीवन आज गुज़र रहा है, उसमें भावना और कल्पना के लिये तनिक भी स्थान नहीं है। वहां तो ठोस वास्तविकता है, कटुता से भरा हुआ यथार्थ है, वर्तमान की सकरी–सी गली है, जिसमें से इस भले जीवन को अपने तईं बड़ा बचाकर अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिये चलना पड़ रहा है। दिन–रात उसकी आंखों के सामने फ़ाइलों के नम्बर और साहब की गुस्से से भरी लाल–लाल आंखें घूमा करती हैं। वह यह भी जानता है

कि यदि कुछ वर्षों तक और यह उसका मानसिक दोहन जारी रहा तो उसकी आत्मा केवल एक क्लर्क की आत्मा रह जायेगी, जिसका कि वह स्वयं मखौल बनाता रहा है। अपने क्लर्क बनने के आरम्भिक दिनों में उसने अपने सहयोगियों का इसी कारण मज़ाक बनाया था कि उनमें फ़ाइलों और आफ़िस की बातों से ऊपर सोचने की शक्ति ही नहीं है और उन्होंने अपनी आत्मा को कुछ चांदी के टुकड़े उपलब्ध करने के लिये बेच दिया है। कई बार उसने अपने सहयोगियों की खिल्ली उड़ाते हुए कहा था:—'अरे, तुम भी भला इन्सान हो जिनके जीवन में कल्पना और भावना के लिये कोई स्थान नहीं।' लेकिन आज दस वर्ष बाद जीवन में वह परिहास करने और दूसरों पर इस विषय को लेकर व्यंग करने की शक्ति नहीं है। जब इन विचारों को लेकर जीवन अपने विगत को उलटने पलटने लगता है तो अन्तर वेदना से वह भर जाता है।

जीवन सड़क पर चला जा रहा था और उसका ध्यान बाज़ार के दोनों तरफ़ की दूकानों पर लगे साइनबोर्डों पर था। अभी वह शहर के सिनेमा हाउस के नज़दीक पहुंचा ही था कि एक मोटर उसके बिलकुल नज़दीक आकर खड़ी हो गई! जीवन चौंक उठा। पलट कर देखा तो मोटर से रविशंकर उसका पुराना सहपाठी उतर रहा था। अपने कपड़ों के बारे में सोचकर पहले तो जीवन संकोच से लजा गया लेकिन रवि के आगे बढ़ आने पर दोनों गले लगाकर मिले। रवि ने आल्हादित स्वर में पूछा:—'अरे भाई कहां थे?'

जीवन ने सरसता भरा उलहना दिया—'हज़रत हमसे पूछते हैं, कहां थे?'

कालेज से निकलने के बाद कभी आपने भी अपना पता दिया, ऐसे शहर से ग़ायब हुए कि बस आज नज़र आ रहे हैं। रवि–खुलकर हँस पड़ा।

'अब तुम्हें क्या बताऊँ जीवन, इस बीच में कितना व्यस्त रहा हूं ? यहां एम० ए० करने के बाद बार-एट-ला के लिये विलायत गया। पास करके आया तो इलाहाबाद में प्रेक्टिस करने लगा। वहां इतना व्यस्त रहा कि पलक उठाने को भी फ़ुर्सत नहीं मिली। लेकिन चलो, यह सारी बातें तो घर पर बैठकर होंगी। पहले सिनेमा देखा जाये फिर घर चला जाये···ऊं !' और वह जीवन की बांह पकड़े मोटर की तरफ़ घसीटता हुआ ले चला। सिनेमा गृह में जाकर रवि ने जीवन की पीठ पर थपकी मारते हुए कहा और तुम्हारे रोमांस का क्या हुआ ?

रवि की बात से जीवन को लगा कि किसी ने उसकी अन्तर वेदना को एक बारगी झकझोर कर जागृत कर दिया है—उसके सूखे घावों को फिर से खरोंचकर हरा कर दिया है। जीवन कल्पना से भरने लगा। उसका वर्तमान अपनी समस्त कटुता को लिये प्रबल भावना की गरिमा में तिरोहित हो चला। रवि ने अपनी बात का कोई उत्तर न पाते हुए फिर एक हल्की-सी थपकी जीवन की पीठ पर जमायी—'अजी हज़रत मैं तुम्हारे पिछवाड़े की खिड़की वाले रोमांस के बारे में पूछ रहा हूं—तुम्हारी मेहरुन्निसा के बारे में !

और वह मुक्त हँसी-हँसा। जीवन की कल्पना सरस और भावना उर्वरा हो चली। ग्यारह वर्ष उसके सामने से चल-चित्र की भांति पल भर में विलीन हो गये और उसके सामने विगत साकार हो गया। उसके सामने मेहरुन्निसा आ खड़ी हुई, सारी घटनाएं, ताक-झांक खिड़की की ओर लुका-छिपी से देखना, गुप्त पत्र व्यवहार करने के नये नये ढंग निकालने की धुन में मस्त रहना—आपस में मिलने के लिये यत्न करना ! उसे लगा जैसे यह सब अभी-अभी की घटनायें हैं। और फिर मेहरुन्निसा को लेकर जो उसे जीवन में असफलता मिली वे दृश्य

भी उसके सामने आगये। तब जीवन आर्द्रस्वर में कह उठा—'अरे भाई रविशंकर, जीवन में रोमांस के लिए कहां जगह है ! यहां सब कुछ ऐसा है, जैसे दरिया का बहता हुआ पानी, जिसमें गति तो है, लेकिन स्थायित्व कहां ? प्रतिक्षण परिवर्तन, विगत का अन्त और वर्तमान का सृजन ! कहते-कहते पूर्व घटनाओं की स्मृति से जीवननाथ का गला भर आया था, वह अपनी वास्तविकता को भूल गया था, जीवन मौन हो गया तो रवि को भला नहीं लगा। सिनेमा आरम्भ होने में अभी समय था। और जीवन ने रवि के उठाये हुए विषय को जिस गम्भीरता की ओर धकेल दिया था, रवि ने अनुभव किया था। उससे एक शुष्क, नीरसता की पर्त कांपते जाड़े के मौसम में शहरों के ऊपर छाए हुए कुहरे की घनी मोटी लकीर-सी अंकित हो गई थी। रविशंकर ने विषयांतर करने के भाव से कहा—'छोड़ो...छोड़ो इन झगड़ों की बातों को ! मुझे क्या पता था कि इस ज़रा-सी बात में दर्शन का दिग्दर्शन करने लगोगे।

और वह फिर खुलकर हँसा। जीवन भी रवि की हँसी में सहयोग देने के लिए मुस्करा दिया। रवि ने वैसे ही प्रमुदित मन कहा—'भाई यहां तो जीवन को आरम्भ से ही एक खेल माना है। फुटबाल में जितनी ज़ोर से प्रहार करो वह आकाश की ओर उतना ही ऊँचा जाता है। जिसमें जितनी शक्ति होती है उतना ही अच्छा वह यह खेल खेलता है। लेकिन यहां मन में सम्बल और शरीर में शक्ति नहीं, वहां खेल नहीं जमता और जीवन, चूंकि मैं जीवन भर खेलता ही रहना चाहता हूँ इस कारण मैं शक्ति को संचित करता हूँ—मन को सबल रखता हूँ।'

रवि ने अपना चांदी का सिगरेट-केस निकाला और उसमें से सिगरेट सुलगा कर एक लम्बा कश लेकर धुएं का अम्बार अपने ऊपर

के प्रदेश की ओर छोड़ दिया ।. रवि कह रहा था—'और सुनो मिस्टर जीवन, जिस रोमांस की बात मैंने अभी छेड़ी ऐसी वेदना किसके जीवन में अन्तरनिहित नहीं है ।

कहते-कहते रवि भी भावातिरेक में फँस गया। सिनेमा की घंटी बज चुकी थी। पर्दा हट चुका था और विज्ञापनों का प्रदर्शन पर्दे पर आरम्भ होगया था। रवि की सिगरेट जल चुकी थी और उसके साथ ही साथ उसकी वाणी भी कुंठित हो गयी थी। सिनेमा आरम्भ हुआ और खत्म भी हो गया। लेकिन इस बीच दोनों में किसी तरह की कोई बात चीत नहीं हुई। सिनेमा खत्म होने पर भी रवि ने जीवन को नहीं छोड़ा उसे ज़बरदस्ती मोटर में बिठा लिया। बंगले पर आकर उसने जीवन को ड्राइङ्ग रूम में बिठाला और आप अन्दर चला गया। कुछ देर बाद अपनी श्रीमती सहित उस कमरे में प्रवेश किया। श्रीमती जी को अपनी ओर आकर्षित करते हुए उसने कहा—'कुमुद, यह जीवन है। बचपन से हम दोनों साथ-साथ रहे हैं, पढ़े हैं।' और फिर कुमुद को अपने साथ कोच पर बिठाते हुए उसने पुनः कहा—

कुमुद, यह जीवन आरम्भ से ही भावना और कल्पना का प्रतिरूप रहा है। अपने में मस्त और दूसरों के सामने बारिश के बाद खुले हुए आकाश में चमकती धूप-सा स्पष्ट !

कुमुद ने ग़ौर से जीवन की ओर देखा और फिर हाथ जोड़ कर अभिवादन किया। जीवन अपने सामने वैभव से लदी नारी को देखकर अतिशय लज्जा के शीत से आहत पक्षी-सा सिकुड़ गया। बोला कुछ नहीं। कुमुद ने अपने पति की ओर देखते हुए कहा—

'आपने कभी इन्हें इलाहाबाद तो बुलाया नहीं। आप बड़े स्वार्थी हैं ।

रवि हँस पड़ा। लेकिन कुमुद ने हँस कर बात नहीं टलने दी। कुछ आग्रह के स्वर में बोली—'इन्हें इलाहाबाद बुलाइये न ?'

रवि ने कहा—'अरे भाई, मैं क्या मना करता हूँ ? तुम्हीं जीवन को सपत्नीक इलाहाबाद आने का नेवता दे डालो। मेरा काम था तुम दोनों का परिचय करा देना और अब तुम जानो या यह जीवन !

इस बार कुमुद ने जीवन से कहा—'कल तो हम जा रहे हैं, लेकिन आप बहन को लेकर इलाहाबाद बड़े दिन की छुट्टियों में ज़रूर आइए।'

जीवन ने कुमुद की बात पर मुस्करा भर दिया। भाव था, यह आना जाना और जिस स्वतन्त्रता के चिन्ह यहां दृष्टिगोचर हो रहे हैं वे हमें कहां नसीब हैं ? लेकिन कुमुद के लिये यह स्वीकृति का सूचक था। वह चुप हो गयी। उस रात खाना खाते–पीते जीवन को रवि के घर बड़ी देर हो गयी। जिस समय वह रवि के बङ्गले के पास से जा रहा था, उस समय कल्पना का सम्मोहन उस पर औंटे हुए दूध पर मलाई-सा छाया हुआ था। रवि के जीवन को लेकर यह भलामानस जीवन कल्पना और भावना के सागर में डुबकी लगाने लगा था। बार–बार यत्न करने पर भी उसका मन पीछे रवि के बंगले की ओर खिंचा जा रहा था। मन कहता था—जीवन तो यही है सुन्दर और सांस्कृतिक पत्नी धन–इज्जत !' फिर अँगड़ाई लेते हुए कहा—'अरे सभी कुछ तो है, इनके पास—सभी कुछ ! जीवन अब अपने घर की ओर चल नहीं, अनिच्छा से घिसटता चला जा रहा था। वह जानता था कि घर जाते ही सोये हुए बच्चे उठ कर उससे चिपकेंगे और कुछ पाने की इच्छा प्रकट करेंगे। पत्नी रोनी आंखों से मेरे चेहरे के भाव पढ़ने की चेष्टा करेगी कि दफ्तर के साहब से किसी प्रकार की कड़वी–तीखी बातचीत तो नहीं हो गई। यह सोचते–सोचते जीवन को लगा कि उसका 'वर्तमान'

उसके लिए भार होगया है, इससें कोई सन्देह नहीं है। लेकिन विगत उसका इतना रूखा और अप्रीतिकर नहीं है। वहां तो वह हँसा ही हँसा है। किसी दिन रोया भी है इसकी भी उसे स्मृति नहीं है। जीवन चलता जा रहा था और उसकी कल्पना यथार्थ और भविष्य से अधिक अब रबर-सी खिंचकर पीछे की ओर विस्तार पाती जा रही थी। वह सोच रहा था—'तब कितना रस जीवन में था। मन अकउए के रुए-सा हल्का बना हवा में कितनी ही ऊंची उड़ान भरा करता था। भविष्य की कल्पना में कितना आकर्षण था। जीवन को लगा कि बालक के हाथ से गैस भरे गुब्बारे के छूट जाने और हवा में निकल भागने पर जैसे बालक उचक उचककर उसे पकड़ने का असफल प्रयत्न करता है ठीक वैसे ही इन क्षणों में यह जीवननाथ भी अपने विगत को पकड़ने के लिये मनोरंजन किन्तु असफल प्रयत्न करने लगा है। इस कल्पना के साथ साथ नर्तकी की पायलों के स्वर में नर्तन करने वाली भावना जैसे साकार हो जाती है, वैसे ही जीवन के सामने मेहरुन्निसा चित्रित हो गई। जिस ज़िन्दगी की सकरी, मैली गली में से जीवन आज गुज़र रहा है उस दम घुटा देने वाले वातावरण की उसने स्वप्न में भी अपने विद्यार्थी जीवन में कल्पना नहीं की थी।

मेहरुन्निसा उसके पड़ोसी की लड़की थी। मेहरू जीवन से प्रेम करती थी और जीवन इस प्रेम के एवज़ में पागल था। कालेज से आकर वह अपने कमरे में बैठ जाता जहां से मेहरुन्निसा के मकान का आमना—सामना होता था। दोनों हाथ, मुँह और आंखों से मुद्राएँ बना-बनाकर सांकेतिक भाषा में अपने भाव व्यक्त किया करते। कालेज में उसने अपने इस रोमांस का ज़िक्र अपने अतरंग मित्र रवि से किया था। और जीवन इस मदहोशी में बहा चला जा रहा था। कितनी कठिनाइयों का सामना कर वह मेहरुन्निसा से दो बार मिला भी था। और उस समय

मेहरू की छल्लेदार घुंघराली लटों को एक तरफ़ करते हुए उसने कहा था—'मेहरू मैं तुमसे बिछुड़ कर जीवित नहीं रह सकूंगा ।'

और मेहरुन्निसा ने मुस्कराते हुए कहा था—'आप अलग होने की बात ही क्यों सोचते हैं ?'

और तब मेहरुन्निसा ने अतिशय कल्पना में बहते हुए आगे कहा था—'जीवन तुम्हारे बिना मेरी ज़िन्दगी खोखली है । उस रीती ज़िन्दगी को लेकर मैं ही कैसे जीवित रह सकूंगी ।'

जीवन इसके आगे न सोच सका । वहां सोचने को था भी क्या ! समय बढ़ा और मेहरुन्निसा की शादी हो गई । मेहरू का मूक अवरोध घर में किसी ने न सुना । पिता ने कहा और लड़की को करना पड़ा । जीवन, घटनाओं के प्रति विद्रूप कर हँसा । और मैं !' वहां भी सोचने के लिए क्या था ? समय और आगे बढ़ा और उसका विवाह भी [illegible] के साथ हो गया । शायद उसकी, वेदना भी किसी ने नहीं पहि[illegible] । [illegible]चलते जीवन ने अस्फुट स्वर में कहा—

'शायद जो कुछ कल था, वह एक स्वप्न था । [illegible] और कल की बातें सब भावनाएँ थीं जो यथार्थ की आंधी [illegible] [illegible]की होने के कारण उड़ गईं । आज उनका कहां अस्तित्व है ! और पुनः उसके सामने पत्नी तथा अपने बच्चों के चेहरे आ गए, जिनमें उसे अपने मन को जमाना था और जीवन को गति देनी थी । घर की ओर जाने की अनिच्छा उसकी दूर होती जा रही थी । और पैर घर की ओर तेज़ी से उठने लगे थे ।

17 APR 1951
ALLAHABAD
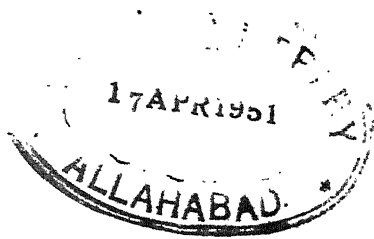
एक पत्र

प्रिय आशा,

तुम्हें आज अपने बचपन की याद भी नहीं होगी। तुमने अपने इस अठारह वर्ष के जीवन में सपने में भी नहीं सोचा होगा कि जिसे तुम 'मां' कह कर पुकारती हो, उस नारी के अलावा भी कोई तुम्हारी मां होने का दावा कर सकती है—बेटी तुम्हारी अभागी मां मैं हूँ। मैं इस भेद का रहस्योद्घाटन करना नहीं चाहती थी और इसीकारण विवेक से मातृत्व को दबाती रही हूँ। मैंने सतत् प्रयत्न किया कि चेतना से ममत्व को दबाये रहूँ। और मुझे इस बात का सन्तोष है, कि मैं अबतक अपने प्रयास में सफल रही हूं। लेकिन इतने पर भी वात्सल्य से प्रेरणा पाकर थोड़ी दूर रह कर तुम्हारी देख-भाल अवश्य करती रही हूँ।

आशा, आज तुम्हें विवाहित और सम्पन्न जीवन व्यतीत करते देख कर मुझे कितना हर्ष होता है। इसे मैं शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती! मुझे आज प्रसन्नता है कि तुम्हारा अब समाज में गौरवमय स्थान है और तुम्हारा विवाहित जीवन उतना ही सुखी है, जितना कि शुभ्र और मोदमय तुम्हारा बचपन रहा है। मैं जानती हूँ जिन्हें तुम मां कह कर

पुकारती हो, उस ममतामयी नारी ने एक दिन के लिए—नहीं एक क्षण के लिए भी तुम्हारे हृदय में इस भावना को उदय होने का अवसर नहीं दिया, कि उनकी तुम मुँह बोली बेटी हो। उनका प्रेम सगी मां के प्रेम से भी अधिक अजस्र-स्रोत-सा निरन्तर बहता रहा है।

बेटी, जैसा मैंने ऊपर लिखा है, मैं इस रहस्य को कभी न खोलती। लेकिन इस विषय में मैं एक अपरिचित से वचनबद्ध हूँ। अपरिचित यों कि मैं अब उनका नाम धाम कुछ नहीं जानती। लेकिन मैंने एक बार वचन दिया था कि जब तुम वयस्क हो जाओगी—तुम्हारा विवाह हो जायेगा, तो मैं इस कटु-सत्य को तुम्हारे सामने एक बार अवश्य रख दूंगी। लेकिन मैं क़तई नहीं चाहती कि इससे तुम्हारे वर्तमान सामाजिक जीवन में किसी प्रकार का अवरोध पैदा हो—इसी लिए इस घटना को तुम भुला देना। और सुनो, जब तक यह पत्र तुम्हारे हाथों में पहुँचेगा, मेरे प्राण पखेरू इस संसार से सदा के लिए विदा ले चुके होंगे।

उन दिनों तुम मुश्किल से तीन बरस की रही होगी। मैं नित्य की तरह शाम के समय अपने कमरे में बैठी हुई थी, कि मांजी ने आकर ग्राहकों के आने की सूचना दी। मैं अपनी-सी पेशेवर दो अन्य लड़कियों के साथ विक्षिप्त-सी बाहर पसन्दगी के लिए आई। वे तीन थे। उनमें से दो ने हमें बुरी तरह घूरना—घृणित कटाक्ष करना और अश्लील चुहल करना शुरू किया। उन दोनों के हाव-भाव और बातचीत करने के ढंग से स्पष्ट प्रतीत होता था, कि वे ऐसी जगह आने के आदी हैं लेकिन उनमें से तीसरा एकदम गुमसुम खड़ा रहा। मुझे उसका व्यवहार देखकर प्रतीत हुआ जैसे वह हमारे सामने ज़बरदस्ती बांधकर लाया गया हो। अपनी इच्छा के विरुद्ध विवश करके! अपने साथियों की बातचीत में वह सहयोग नहीं दे पाता था। बल्कि बेचैनी महसूस कररहा था। उसके इस स्वभाव की इस सादगी से मुझे आभास मिल गया था, कि मेरे हिस्से में

वही पड़ेगा। क्योंकि, अन्य दोनों व्यक्तियों के जांच पड़ताल के ढंग ने यह स्पष्ट कर दिया था, कि वे मेरी दोनों हमजोलियों को पसन्द करेंगे, जो मुझसे अधिक सुन्दर स्वभाव से चञ्चल और उम्र में कम हैं।

अपने कमरे में लौटते ही मुझे पता लगा, जैसा मैंने सोचा था वही हुआ। मैं पलंग पर बैठी थी, कि उन्होंने दरवाज़े को आहिस्ता से थोड़ा-सा खोलकर झांका। मैंने कहा—

'चले आइये सीधे।'

और साथ मुस्करा कर बंकिम दृष्टि से उनकी ओर देखा। वह सहमे कबूतर से कमरे में घुसे। फिर कुछ सोचकर पीछे मुड़े। जाकर दरवाज़ा बन्द किया और चटखनी चढ़ा दी। और जैसे ही वे बैठकर मेरी तरफ़ बढ़े कि उनकी दृष्टि कमरे की अरगनी पर टंगी बच्ची की फ्रौक पर पड़ी। और उसे देखकर वह ऐसे चौंके जैसे शराबी पत्थर की ठोकर खाकर सचेत हो जाता है। यदि मैं उन्हें अपनी ओर आकर्षित न करती तो न जाने वे कबतक तन्मय होकर उस फ्रौक की ओर ही देखते रहते। मैंने अपनी आंखों में अलस मादिकता का भाव व्यक्त करते हुए अंगड़ाई ली—

'इधर, यहां आइये न!'

मेरी नज़रों में शरारत नाच उठी थी जो हम-सी पेशेवरों के लिए व्यवसाय में बड़ी सहायक होती है। लेकिन मेरी बात का असर उन पर कुछ न हुआ। उनकी दृष्टि अब भी बेबी फ्रौक की तरफ़ ही लगी हुई थी। मैंने पलंग से उतर कर उनका हाथ पकड़ कर खींचा और पलंग पर बिठा दिया और पूछा—

'आपका नाम क्या है?'

'हरिहर।'

'आप पहले भी कभी ऐसी जगह गए हैं?'

उन्होंने चौंककर कहा—

'जी···क्यों नहीं, कई बार।'

लेकिन उनकी घबराहट और बोलने के ढङ्ग से स्पष्ट प्रतीत हो रहा था, कि वे झूठ बोल रहे हैं। तब मुझे शरारत सूझी, मैंने कुछ गम्भीर होकर अपनी आंखों द्वारा ऐसा भाव प्रदर्शित किया जैसे मुझे उनकी कही बात का मुतलक विश्वास हो गया है। मैंने अपनी आंखें उनके चेहरे पर केन्द्रित कर कहा—

'अच्छा।'

और फिर खुल कर हँस पड़ी। वे सहम गए। उन्होंने थोड़ी देर रुक कर कहा—

'मैं इस बेबी फ्रौक की तरफ़ देख रहा था। मेरी...

मैंने उनकी बात बीच में ही काटते हुए इस विषय को एक बार ही खत्म करने के ढङ्ग से कहा—

'यह मेरी बच्ची का फ्रौक है।'

अनेक चेष्टाएं करने के बाद भी उस समय मुझे बड़ा मानसिक परिताप हुआ कि इतनी चेष्टाओं के बावजूद मैं अपने प्रयास में सफल नहीं हुई—उनका ध्यान मैं उस फ्रौक की ओर से हटाकर अपनी ओर न खींच सकी। उन्होंने उस बेबी फ्रौक की ओर देखते हुए कहा—

'मेरे भी एक बच्ची है। उसकी भी ठीक इसी रंग की एक फ्रौक है। इसे देखकर मुझे उसका स्मरण हो आता है। मुझे उनकी बच्ची होने की बात सुन कर चोट लगी। सच तो यह कि मुझे उनकी यह बात ही पसन्द नहीं आई। मैंने व्यग्रता प्रकट करते हुए कहा—

'अभी मांजी बुलाती होंगी। आपका समय खत्म हो रहा है।'

प्रत्युत्तर में वे मुस्करा दिए। मैंने बिना उनकी मुस्कराहट की ओर ध्यान दिए फिर कहा—

'देखिए आपके साथी कमरे से निकल रहे हैं।'

उन्होंने वैसी ही मुस्कराहट अपने आनन पर दीप्त करते हुए कहा—आप उनकी चिन्ता न करें।'

फिर कुछ सोच कर पूछा—

'आप बतायेंगी कि आपकी बच्ची इस समय कहां है?'

और मैंने उस कमरे की ओर सङ्केत कर दिया जिधर बेबी पालने में सो रही थी। उन्होंने विनम्र होकर कहा—

'मेहरबानी करके मुझे उसी कमरे में ले चलिए।'

इसी समय हमारे दरवाज़े पर आकर मां जी ने खटखटाया और फिर बड़बड़ाई भी। उन्होंने पलंग पर से उठते हुए कहा—

तुम बैठो मैं अभी आता हूँ।'

लेकिन मैं भी उत्सुकतावश उनके पीछे-पीछे हो ली। बाहर जाकर उन्होंने मांजी से दस मिनिट का समय और मांगा। मांजी ने पहले तो साफ़ मना कर दिया फिर दोनों हाथों की अंगूठे समेत अंगुलियां दिखा कर बोली—

'इतने लगेंगे।'

उन्होंने पर्स से दसका नोट निकाल कर मांजी को दे दिया। उनके मित्र इस समय तक कमरे से बाहर निकल आये थे और मुझे देखकर व्यङ्ग वर्षा कर रहे थे। उनके एक साथी ने तो मुझे लेकर उनकी ओर बुरी तरह से ढकेला कि मैं अपने को बड़ी मुश्किल से गिरते से बचा पाई। इसी समय वे फिर कमरे में आ गए और अन्दर मुझे करके चटखनी लगा दी। उनके मित्र फिर भी भद्दे फ़िक़रे कसते रहे और शोरगुल मचाते रहे। उन्होंने कमरे में प्रवेश करते ही बेबी फ्रौक की ओर देखा और फिर मुझे उस ओर चलने का सङ्केत किया जहां बेबी सो रही थी। जब हम

उस कमरे में पहुंचे तो वे कुछ क्षण तक उस सोती हुई बच्ची की ओर देखते रहे। मैंने उन्हें बनाने के ढङ्ग से कहा—

'क्या वास्तव में आपके भी बच्ची है ?'

'तुम्हें मेरी बात का विश्वास नहीं होता ?'

मैंने बात को पतङ्ग सी ढील देकर कहा—

'आपकी पत्नी जीवित हैं ?'

उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—

'मेरी पत्नी सुन्दर है और मैं उसे चाहता हूँ—वे जीवित हैं।'

मुझे उनकी बात कुछ ऐसी लगी, जो मेरे मर्म पर जा कर वेदना करने लगी। मैंने कहा—

'तो फिर आप ऐसी जगह क्यों आते हैं ?'

दूसरे ही क्षण मैंने कुछ उग्र होकर कहा—

'या तो आप जो कुछ कह रहे हैं असत्य है और सिर्फ़ मुझे चिढ़ा रहे हैं। नहीं तो···

तभी उन्होंने बिना मेरी बात की ओर ध्यान दिए मुझे अंगुली के इशारे से चुप कर दिया, बोले—

'मेरी सुनो !'

मैं अचरज से उनकी ओर देखने लगी। आशा, उनके कहने के ढङ्ग में कुछ ऐसा स्वामित्व था जिसकी अवहेलना मेरी शक्ति के बाहर थी। बोले—

'जब मैं अपनी लड़की के भविष्य की तुलना इस बच्ची के भविष्य से करता हूँ, तो कांप उठता हूँ। जवान होते ही इसे भी तुम्हारा जैसा जीवन व्यतीत करने के लिए मजबूर होना पड़ेगा।'

मैंने अपने सामने अपने पेशे की तौहीन सुनकर कड़ककर कहा—

'बाबूजी आप मेरा अपमान कर रहे हैं। आप भूलते हैं कि आप कहां हैं !'

उन्होंने मेरी बात का बुरा नहीं माना, कहा—

'मैं तुम्हारे अपमान की बात नहीं, इस बच्ची की बात कह रहा था।'

इस समय भी मेरा हृदय अपमान से पीड़ित था। मैंने वैसे ही गम्भीर भाव से कहा—

'हरएक का अपना समाज है। इस समाज में ही बच्चे बड़े होते हैं और फिर उस समाज के ढर्रे पर ही अपना जीवन ढाल देते हैं। मैं जहां हूं, वहां कहीं भी अपनी बच्ची का अकल्याण और दुर्भाग्य नहीं देख पाती। और फिर भी स्वर को ज़रा और उत्तेजित कर रहा था—

'आप जिस काम से यहां आए हैं, उसे भूल रहे हैं। मुझे विवश होकर मां जी को बुला लेना पड़ेगा। वे हमारी बात सुनकर मुस्करा दिए और बोले—

मैं मानता हूँ हरएक का अपना समाज होता है और जो जिन परिस्थितियों में पलता है, उसे अपने आस-पास का वातावरण नहीं खलता।'

फिर कुछ दृढ़ होकर मेरी ओर तेज़ी से देखते हुए बोले—

'लेकिन तुम मां हो! तुम अपनी लड़की के लिए उस समाज में प्रवेश की भी कामना करती होगी, जहां पति, देवर, ससुर और सास नाम की संज्ञा मौजूद हैं। कौन-सी मां अपनी लड़की को गृहस्थी और गृहिणी के रूप में देखना पसन्द न करेगी!'

और फिर अतिशय कठोर होकर कहा था—

और इसी सत्र को लेकर मैं सोचने लगा था। मैं कहता हूँ तुम इस बच्ची को इसके भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए अपने से अलग कर देना।

उन क्षणों में, मैं बेटी ! पागल-सी हो गई थी। मैंने झपट कर तुझे पालने से उठा लिया था और सुबकते हुए कहा था—

'नहीं...नहीं...नहीं ! मैं अपनी बच्ची को एक पल के लिए भी अलग नहीं करूंगी। तुम कौन हो जो कहते हो कि अपनी बच्ची को मैं अपने से अलग कर दूँ।'

लेकिन उन्होंने मेरी बात से बिना प्रभावित हुए अनुशासन के ढङ्ग से फिर कहा—

लड़की के भविष्य के हित रक्षा के लिए तुम्हें इस बच्ची को अपने से अलग कर ही देना पड़ेगा। अगर तुम चाहती हो कि तुम्हारी लड़की बड़ी होकर समाज में आदर पाए और इस दूषित वातावरण से अछूती रहे, तो उन्हें उसे अपने साए से भी दूर रखना पड़ेगा। और मैं जानता हूं तुम मां हो—तुम्हारे अन्दर भी कोमल भावनाएं हैं—तुम्हारे अन्दर भी अपनी सन्तान को समाज के सोपान पर चढ़ते देखने का चाव है।

मेरा पागलपन दूर हो चला था ! मैं एकटक अनिमेष दृष्टि से अपनी बच्ची की ओर, उसके भविष्य की कल्पना कर प्रातःकालीन नक्षत्र सी क्षीण पड़ती जा रही थी। उन्होंने फिर कहा था—

'ममत्व तुम्हारा मार्ग रोकेगा। पल-पल पर बाधाएं विकराल रूप ग्रहण कर मार्ग से विचलित करने का यत्न करेंगी। लेकिन सुनो, तुम्हें उन विषम परिस्थितियों और कंटकाकीर्ण मार्ग में भी अपनी बच्ची के भविष्य का ध्यान रखना होगा।

दरवाज़े पर फिर खट-खट होने लगी थी। मां जी अपशब्द बक रही थीं और उनके साथी अधीर होकर मुँह में जो कुछ आ रहा था, बकते चले जा रहे थे तभी उन्होंने जाते हुए मुझसे फिर कहा था—

'एक बात का वायदा करो।'

मैंने स्तम्भित होकर उनकी ओर देखते हुए कहा—

'क्या ?'

तब अपनी प्रकृतिस्थ मुस्कराहट चेहरे पर बिखेरते हुए उन्होंने कहा था—

जब यह बच्ची बड़ी हो जाय और इसका विवाह हो जाय, तो एक दिन तुम इस रहस्य को उस पर प्रकट कर दोगी।

मैंने सयम सञ्चय कर कहा था—

'तुम बड़े निष्ठुर हो।'

लेकिन मैंने देखा वे मेरी बात की प्रतीक्षा किए बिना ही आगे बढ़ गए हैं। दरवाज़े के पास पहुँच गए हैं। जहां खड़ी थी वहीं से मैंने कहा—

'तुम्हें विश्वास है कि मैं अपने वचन को निभाऊंगी।'

पलटकर उन्होंने सिर्फ़ इतना ही कहा था—

'मैंने बचन एक मां से लिया है। पुत्री की मङ्गल कामना के लिए मां से अधिक प्रमाणित शब्द और किसके हो सकते हैं ?'

और वे दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल गये थे, जहां उनके अधीर साथी उनकी प्रतीक्षा में विवेक हाथ से खो बैठे थे और बुरी गालियां बक रहे थे—जहां मां जी अधिक समय लग जाने के कारण उन्हें आग्नेय नेत्रों से घूर रही थीं और शायद कुछ बुदबुदा भी रही थीं।

परिचय हीन मिलन

उदासमना राज ने जब एक लम्बी प्रतीक्षा के बाद पति को अपने सामने देखा, तो अपने असली किन्तु बड़े बड़े आकर्षक नेत्रों को पति की मुखाकृति पर केन्द्रित करते हुए उसने कहा, "आज आपने क्लब में बड़ी देर लगाई। न जाने कब का खाना ठंडा हो गया। इस भीगी रात में कब से आपकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। किन्तु आप हैं कि घर से बाहर!"

कुमार एक बारगी अपनी पत्नी के इन तानों को सुनकर मुस्कराया। उसके खिलते हुए फूल से प्रफुल्लित चेहरे और स्नान के बाद ताज़े व्यक्तित्व पर शरारत की एक हल्की लहर दौड़ गई जिसे देखकर कहा जा सकता था कि वह भी पत्नी से मज़ाक किया चाहता था—एक मीठी चुटकी ले, राज के अत्यधिक बंकिम भ्रूक्षेप, रूठने और स्त्री–द्वारा वीतराग प्रदर्शन का आनन्द लूटना चाहता था। सहसा उसके चेहरे पर परिवर्तन हुआ विहँसता हुआ चेहरा गर्मी की तपिश से झुलसे हुए फूल–सा कुम्हला गया। एक भावना वेग से उठी और उसके नीचे उत्फुल्लता ताज़गी और विचारों की रवानगी तिरोहित हो गई, जैसे चांदनी रात में

क्षितिज के किसी एक कोने से घना, कोयले-सा काला बादल उठा हो और उसने अपने सियापे में तारों की झिलमिलाहट और निरभ्र आकाश में चांद की छिटकती शुभ्र, शान्तिमयी चांदनी को ढक लिया हो। और बस, फिर अन्धकार ही अन्धकार—केवल अखरने वाला सूनापन—शरीर को विकम्पित कर देने वाली भयानकता।

राज ने कुमार के चेहरे के परिवर्तन को पढ़ा, लेकिन कहा नहीं। कुमार बड़ी देर तक अपने अन्तर में उठती भावना से लड़ता रहा। वह राज की ओर देख रहा था, लेकिन उसका मन कहीं और था। वह एक निर्जीव मूर्ति की तरह खड़ा था। थोड़ी देर बाद भी जब राज ने उसमें कोई गति नहीं देखी, तो उसने धीरे से अपने पति के शरीर को झकझोरते हुए कहा, "सुनिए"

कुमार जैसे गहरी निद्रा से 'अंह कर चिहुँक उठा। उसने सँभलते हुए कहा, "उफ़, बड़ा भयानक आदमी था।"

राज ने फिर धीरे से अपने पति के शरीर को हिलाते हुए कहा, "सुनिए, आप खड़े न रहिए, बैठ जाइए।" कुमार की चेतना लौट आई थी। जिस भावना ने शरद के कुहासे-सा उसके व्यक्तित्व को ढक लिया था, उस पर उसने विजय पा ली थी और वह पत्नी के सामने खड़ा पुनः मुस्करा रहा था। आराम से कुर्सी पर बैठकर जूते के फीते खोलते हुए कहा—"राज, इस इतनी बड़ी दुनियाँ में विचित्रता अद्भुत आकर्षण है, और मैं बचपन से इस विचित्रता के लिए एक बड़ा मोह मन में संगृहीत किए रहा हूँ। लेकिन अभी-अभी मैंने क्लब में उस विचित्रता को भयानकता के रूप में साकार देखा है। सच कहता हूँ राज, मैं कांप उठा। उस वास्तविकता के सामने मैं अपने निजत्व की रक्षा नहीं कर पाया। पहली बार जीवन में मैंने भावना को प्रबल पाया है, जहां मेरा अस्तित्व क्षीण और खोखला-सा महसूस होने लगा है।

राज उत्सुक नेत्रों से अपने पति की ओर देखती रही। कुमार ने कुछ और तन्मय होकर कहा—"उस भयानकता को देखकर भी मेरा विश्वास है कि विचित्रता जीवन की गति है। रहस्य है, अनोखापन है, तो जीवन में प्रवाह है। जितना हम एक दूसरे के निकट आते जाते हैं, आकर्षण उतना ही कम होता जाता है।" कहने के साथ साथ कुमार ने नाक सिकोड़कर कुछ ऐसा मुंह बनाया कि राज हँस पड़ी। कुमार के गम्भीर होकर बात करने के ढंग से वातावरण में जो तरुण मनों को अखरने वाली बुजुर्गों सी प्रौढ़ता आ गई थी, राज की एक उन्मुक्त हँसी से उसमें ढिलाई आ गई।

लेकिन कुमार फिर तथ्य पर आ गया था। उसने कहा, "नहीं राज, जो कुछ मैंने अभी कहा, उसमें हँसने के लिए कुछ नहीं है। उसमें सत्य है और कटुता भी है।"

राज चुप हो गई। वह आगे मुस्करा भी न सकी।

कुमार कह रहा था, "मैंने अभी तुमसे विचित्रता और भयानकता की बात कही थी। तुम कैप्टिन रविनाथ को जानती ही हो। आज वह अपने साथ एक अजनबी को क्लब में ले आया। टेनिस हो चुकी थी और मैं, चड्ढा, भल्ला और शान्तिप्रसाद के साथ मन बहलाने के लिए ब्रिज खेलने बैठ गया था, कि रविनाथ आ पहुंचा। मैंने उसकी तरफ़ देखते हुए कहा, रवि, आज टेनिस में नहीं आए। नियोगी से बड़ा ज़ोरों का खेल रहा।'

उसने बिना मेरी बात की ओर ध्यान दिए, उस अजनबी का परिचय देना आरम्भ कर दिया, 'यह मेरे मित्र हैं कर्नल एस० पी० दुबे! आप स्वर्गीय हाईनेस...के निजी सेक्रेटरी थे। पोलो के कुशल खिलाड़ी, शिकार के अव्वल दर्जे के शौकीन और दोस्तों के लिए एक बड़ी अच्छी शगल!'

इस परिचय के बाद कर्नल दुबे ने सीधे हाथ की अँगुली से बटी हुई भाले की नोक-सी नुकीली मूंछों को शह देकर ऊपर उठाया और थोड़ा पीठ को झुकाकर अभिनन्दन किया। हम सब लोगों ने अपनी-अपनी जगह पर खड़े होकर उनसे हाथ मिलाया और उन्हें ससम्मान बैठने के लिए जगह छोड़ दी।

राज, हमारे जीवन में नित्य कुछ ऐसे व्यक्तित्व आते हैं, जिनके प्रति हम सहज ही खिंच जाते हैं। यदि हम उनकी ओर आकर्षित न भी होना चाहें, तो भी एक विवशता हमें उस ओर बढ़ने की प्रेरणा देती है और हम इच्छा के विरुद्ध भी उस ओर बढ़ जाते हैं। इसके विपरीत कुछ ऐसे लोगों का भी हमसे सम्पर्क हो जाता है, जो अनायास हमारी ओर बढ़ते हैं और हमारी अनाशक्ति होते हुए भी वे हम में सिक्त हो जाते हैं।

मैंने चन्द क्षणों में ही देखा, कर्नल के व्यक्तित्व में विचित्र सम्मोहन शक्ति है, जो दूसरों को उसकी ओर खींचती है। मुझे आरम्भ में कर्नल की विचित्रता बड़ी भली लगी। लगभग पैंसठ बरस की उम्र होने पर भी उनका चेहरा काश्मीरी सेब-सा सुर्ख रखा हुआ था। चेहरे पर रस्सी-सी उमठी हुई मूंछें प्रभावोत्पादक थीं। सिर के बाल बरफ़ से सफ़ेद हो गए थे; लेकिन चेहरे पर झुर्रियों का निशान भी नहीं था। बदन उनका गठा हुआ था और ब्रिचेस के बाहर उनकी पिंडलियों की गठन बड़ी भली मालूम होती थी। उनकी आंखों में सैनिक रौब और एक पैनापन था, जो दूसरे के अन्तर को बेधता हुआ गहराई नापने की क्षमता रखता था। उनके बात करने के ढंग में अनुभव की प्रौढ़ता थी। मैंने बँटे हुए ताशों को इकट्ठा करते हुए कर्नल दुबे से कहा—'आशा है कर्नल, आपको हम लोगों के साथ ड्रिंक करने में परहेज़ न होगा?'

कर्नल ने मुस्कराते हुए कहा—'मि० कुमार, इसमें परहेज़ की क्या बात है ! मैं तो परिचय को भी 'फारमेलटी' समझता हूँ । आप आश्चर्य करेंगे मि० कुमार, अनेक बार परिचय हीन रहने पर भी मैंने अपरिचितों के आगे अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए हाथ बढ़ा दिया है और मुझे कभी मायूस नहीं होना पड़ा । एक बार स्वर्गीय हाईनेस... ने एक ग़रीब किसान को ज्वार की रोटी, कैथे की चटनी के साथ खाते देखा । बोले—'कर्नल दुबे, हम किसान की यह रोटी खाएँगे ।' और मैंने बिना आगा-पीछा देखे, सीधे जाकर उस किसान से रोटी मांगी । उसने मेरी वेष-भूषा की ओर देखा और हँसा । फिर बोला—'सरकार, हँसी करते हो ।' लाख समझाने पर भी जब वह नहीं माना, तो मैं उसके सामने बैठ गया और उसके हाथों से रोटी लेकर खाने लगा और एक टुकड़ा और चटनी महाराज के लिए भी ले आया ।'

हम लोग कर्नल दुबे की इस बेतकल्लुफी की बात सुनकर बड़े प्रभावित हुए । हम लोग लान से उठकर कमरे में आ गए थे । मैंने 'ब्वाय' को एक बोतल 'व्हाइट हार्स' लाने की आज्ञा दी । पांच मिनट में हमारे सामने नमकीन, बोतल तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ आ गईं । ब्वाय ने बोतल का कार्क खोला और पांच गिलासों में पेय डालना आरम्भ किया । जब वह उनमें सोडावाटर मिलाने लगा, तो कर्नल दुबे ने अपने गिलास के लिए मना कर दिया । कर्नल ने अपना जाम उठाते हुए कहा—'मि० कुमार की सेहत क़ायम रहे ।'

और दूसरे ही क्षण जाम खाली था । सर्नल के चेहरे पर एक प्रकाश सा फैल गया, आंखों में ज्योति दीप्त हो उठी । कर्नल ने अपनी बात का स्मरण करते हुए कहा—'तो मि० कुमार, मैं अभी-अभी कह रहा था कि मैं परिचय में विश्वास नहीं करता ।'

हम सब कर्नल की तरफ़ ग़ौर से देखने लगे। शान्तिप्रसाद जो, कमरे में आते समय हम लोगों से दूर हो गया था, फिर आ गया। मैंने ब्वाय की तरफ़ देखते हुए कहा, 'ब्वाय, एक बोतल और कुछ नमकीन और लाओ।'

कर्नल कह रहे थे—'परिचयहीन मिलन अद्भुत होता है। आप किसी को नहीं जानते, फिर भी उससे उसी तरह बात करते हैं जैसे कि आप उसे एक लम्बे अर्से से जानते हों और उससे आपकी घनिष्ठता हो। बतलाइए, इसमें है मज़ा या नहीं?'

कर्नल दूसरा पेग चढ़ा चुके थे और तीसरा पेग उन्होंने अपने हाथों से भर लिया था। कर्नल ने अपनी तर्जनी अँगुली से फिर अपनी मूंछों को शह दी और सीधे हाथ को आहिस्ते से चेहरे पर फेरा—'मैं अभी आपको इस परिचयहीन मिलन का एक अद्भुत किस्सा सुनाऊँगा। केप्टिन रविनाथ जानते हैं कि मुझे अब तक कितना घूमना पड़ा है। विदेशों में मैं कहां नहीं गया? दो बार स्वर्गीय हाईनेस के साथ योरप-पर्यटन किया और दो बार दो महायुद्धों के अवसरों पर पश्चिमी मोर्चों पर डटकर लड़ चुका हूँ।

खैर, छोड़िए इन बातों को, मैं भूमिका बांधकर आपकी उत्सुकता का दोहन नहीं करना चाहता। मुझे आप से अपने परिचयहीन मिलन की बात कहनी है।'

कर्नल का तीसरा पेग भी खाली हो चुका था और बड़ी आसक्ति से वह अपने हाथों चौथा ढाल रहे थे। उनकी सोई चेतना सजग हो उठी थी और अन्दर के अवगुंठन खुल-खुलकर जाम में भरे पेय में मिलते जा रहे थे। उन्होंने कहा—'आज से ठीक तेईस वर्ष पहले की बात है। हिन्दुस्थान से फ्रांस में तार मिला कि हाईनेस...की बड़ी महारानी सख्त

बीमार हैं और महाराज को मरने से पूर्व एक बार देखना चाहती हैं। महाराज उस समय पेरिस की एक श्रेष्ठ सुन्दरी के साथ नृत्य कर रहे थे। मैंने महाराज को जाकर समाचार दिया, तो उनके नृत्य में बाधा पड़ी और वे क्रोध से उबल पड़े—'बड़ी महारानी मरना चाहती हैं और उससे पूर्व मुझसे मिलना चाहती हैं !'

मैंने हाईनेस की बातों की परवा न करते हुए कहा—'योर हाईनेस, मुझे आपसे एकान्त में कुछ बातचीत करनी है।' और संकेत से मैंने उस सुन्दरी को वहां से हट जाने के लिए कहा। वह कुछ बुदबुदाती हुई वहां से हट गई। हाईनेस ने एक बार चुभती आंखों से मेरी ओर देखा और मेरे साथ हो लिए। कमरे में आकर मैंने हाईनेस से बातचीत की और वे स्वदेश लौट चलने के लिए राज़ी हो गए? बम्बई आकर जब हम लोग......स्टेट के लिए रवाना हुए तो वह परिचयहीन मिलन आरम्भ हुआ। स्टेशन पर हम ट्रेन की प्रतीक्षा कर रहे थे कि एक पारसी परिवार पास आकर खड़ा हो गया। पारसी सज्जन के साथ उनकी पत्नी के अतिरिक्त दो लड़कियां थीं, जो वयस्क और सुन्दर थीं।

कर्नल ने हँसते हुए कहा—'मेरे दोस्तो, आप आज से तेईस वर्ष पहले की मेरी आकृति और स्वास्थ्य की आसानी से कल्पना कर सकते हैं। जवानी की प्रौढ़ता के द्वार पर खड़ा था, लेकिन जिस राजसी वातावरण में पला था, उससे जवानी दूर हुई नहीं दीखती थी। आंखों में लालसा और आतुरता व्यापक रंगों में फैली हुई थी और सौन्दर्य के प्रति उठने वाले मीठे विचारों में कमी नहीं आई थी। मेरी बातों से आपको यक़ीन हो गया होगा कि मैंने अपने जीवन में सजीव सौन्दर्य के एक-से-एक नमूने देखे होंगे; लेकिन उन पारसी की बड़ी लड़की की आंखों में मैंने यौवन का कुछ ऐसा उन्माद देखा कि मैं उसकी ओर देखता ही रह

गया। उसके बाल पीछे की ओर छितराए हुए थे। ओठों पर लिपस्टिक का हलका-सा प्रयोग किया गया था। उसके मुस्कराने, बातचीत करने में ओठ खुलकर ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे हलके रंग की गुलाब की गुलाबी कली थोड़ी खुली हो; पंखुड़ियों की ताज़ी लालिमा ज़रा हवा के साथ विहँसी हो और हवा में हलकी पंखुड़ियां थिरकने लगी हों। उसकी पूरी आकृति नयनाभिराम थी। उसने खूनी लाल रंग की जारजेट की साड़ी पहन रखी थी, उससे ही मेच करता ब्लाउज़ था और हाथ में एक छोटी-सी घड़ी बँधी हुई थी। मुझे अपनी ओर एकटक देखकर उसने खड़े होने का रुख बदल दिया। वह दूसरी ओर देखने लगी। हाईनेस अपने सेलून में चढ़ गए थे और मुझे भी चाहिए था कि उनके पास जा पहुंचता। लेकिन इस लड़की से बातचीत करने की उत्कट कामना मेरे अन्दर बलवती होती जा रही थी।

बोतल खत्म हो गई थी और कर्नल खाली जाम को उठाकर ब्वाय से कह रहे थे—'इसमें और डालो।' मैंने दूसरी बोतल के लिए आज्ञा दी।

बोतल आई और कर्नल ने पेग अपने हाथों से तैयार किया। पेय को गले से नीचे उतार कर वे बोले—'दोस्तो, इधर भावना उस लड़की से बात करने के लिए प्रबल हुई और उधर बिना हिचकिचाहट के मेरे पैर उस तरफ़ उठ गए। पारसी के पास जाकर मैंने कहा—यदि आप बुरा न मानें, तो क्या मैं जान सकता हूँ कि आप कहां के लिए सफ़र कर रहे हैं ?'

पारसी मुझे हाईनेस के साथ देख चुका था। उसने अत्यन्त विनम्र होकर कहा—दिल्ली जाना है।

मैंने हँसते हुए कहा—'मेरा आपका दिल्ली तक साथ है। दिल्ली से हम राजपूताना की... ..स्टेट के लिए जायेंगे।'

इसी समय गाड़ी आई। पारसी का कम्पार्टमेंट रिजर्व था। सैलून में जाकर मैंने महाराज से यह कह कर अनुमति ले ली कि एक संबन्धी के साथ निकट के फ़र्स्ट क्लास में सफ़र कर रहा हूँ।

और, मैं पुन; पारसी के पास आया—'क्या मैं आपके कम्पार्टमेंट में आपके साथ सफ़र कर सकता हूँ ?'

उन सज्जन को कोई आपत्ति नहीं हुई। मैं उसी कम्पार्टमेंट में बैठ गया। गाड़ी चली और बातों का सिलसिला छिड़ा। पारसी की बम्बई में जवाहिरात की दुकान थी और वे दिल्ली की दुकान का काम देखने जा रहे थे। वहां से उन्हें शिमला की दुकान देखने [illegible] बोले—'आप तो हाईनेस......के पर्सनल सेक्रेटरी हैं। कुछ जेवरात खरीदने के लिए हामरी दुकान से कहो न ! बढ़िया से बढ़िया जवाहिरात और जेव-रात हमारी दुकान पर मौजूद हैं।'

मैंने उन्हें आश्वासन दिया कि दिल्ली में अवश्य हाईनेस उनकी दुकान से जवाहिरात खरीदेंगे और भविष्य में भी वे स्थायी ग्राहक बन जायेंगे। इन सब बातों से मेरा विचार उन सज्जन को प्रसन्न करने का नहीं था, बल्कि मैं उस लड़की का ध्यान आकर्षित करना चाहता था। और अगर मैं भूलता नहीं हूँ तो मेरी बातों का उस पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। शाम के आठ बजे तक उन सज्जन से मेरी बराबर बातचीत होती रही। उस शाम खाना भी मैंने उस परिवार के साथ ही खाया। सच पूछिए तो मैं यह भूल गया कि मैं हाईनेस का सेक्रेटरी हूँ और हाईनेस के साथ सफ़र कर रहा हूँ। उसी परिवार में ऐसा घुल-मिल गया जैसे मेरा बहुत पुराना परिचय हो।

खाना खाकर वे सज्जन ऊंघने लगे और सो गए। पत्नी भी निद्रावश हो चलीं और दोनों लड़कियां भी झपकियां लेने लगीं। मैं खिड़की से

सटा एक तरफ़ बैठा हुआ था, वैसा ही बैठा रहा। गाड़ी उड़ी चली जा रही थी और मेरे विचार भी धारोष्ण दूध के झाग से दिमाग़ में इकट्ठे होते जा रहे थे। मैं सोच रहा था—इस जीवन में कहां स्थायित्व है! लगता है जैसे सागर में मौजें उठ रही हैं। दो मौजें उठीं, परस्पर टकराईं और फिर अलग अलग हो गईं। अब कौन जानता है कि वे ज़िन्दगी में फिर कभी मिलेंगी या नहीं। इस भाव के साथ ही मैंने खिड़की से मुंह हटाकर उस लड़की की तरफ़ देखा। लड़की की पलकें मुंदी हुईं थीं। उसके प्रशस्त माथे पर रेखाएं बन और बिगड़ रही थीं, जिससे आ[illegible] मिलता [illegible] कि वह कोई स्वप्न देख रही है। उसकी भावना-पूरि[illegible] अच्छी लगी। मैंने अपने विचारों को उस ओर से [illegible] चाहा; लेकिन सफलता नहीं मिली।

[illegible] आप में से यदि किसी ने इस स्थिति का सामना किया हो, तो ज्ञात होगा कि अहमन्यता का दावा भरने वाला संस्कृति और लोकाचार का पुजारी इन्सान अपने अन्दर की कमज़ोरियों के कारण ही कितना कमज़ोर है—कितना अशक्त है। उन क्षणों में मुझे लग रहा था कि सदियों से पाले-पोसे संस्कृति और लोकाचार के प्रतिबन्ध प्रतिपल टूटते चले जा रहे हैं और मैं उन्मुक्त होता चला जा रहा हूँ। आवेग मेरे अन्दर तूफ़ान-सा उठ रहा था। मेरा उद्वेग संयम के पात्र से ऊपर छलकने लगा था। भावावेश में अनायास मेरा हाथ उसके सिर के लम्बे केशों पर पहुँच गया।

कर्नल ने चीखकर कहा—'ब्वाय, एक पेग और।'

पेय को गले से नीचे उतार कर कर्नल ने फिर स्मृति ताज़ी करना शुरू किया—लड़की इस आकस्मिकता से चीख पड़ी। मैंने तत्काल अपनी अंगुलियां लड़की की केश-राशि से हटा लीं; लेकिन इसी बीच

उसका पिता छड़ी लेकर मुझे मारने के लिए ऊपर के बथ से नीचे उतरा और लकड़ी से मुझ पर प्रहार किया। मैंने उन्हीं क्षणों में देखा कि मेरे हाथों में जेब से पिस्तौल निकल आई है और जैसे ही उसके पिता ने दूसरा प्रहार करना चाहा कि मेरी गोली उसके सीने को पार कर गई। खून और खून ही खून मेरी नज़रों के सामने फैल गया। मृतक की पत्नी ने जंजीर खींचने की चेष्टा की और वह भी गोली खाकर ढेर हो गई। खून और खून ही खून मेरी आंखोंके आगे फिर फैल गया। मैं कांप रहा था, लेकिन पिस्तौल को मज़बूती के साथ पकड़े हुए था। मैंने मुड़कर उसी समय देखा, छोटी लड़की ने बड़ा-सा बर्तन उठा लिया है और मेरे सिर पर उससे चोट करना चाहती है। हिंसा और खून फिर आंखों में चमका और वह लड़की भी ढेर हो गई। बड़ी लड़की को जो ज़रा सा अवसर मिला, तो चलती गाड़ी से कूद पड़ी।

काली भयानक रात थी और गाड़ी उसी तेज़ रफ्तार से उड़ी चली जा रही थी। मेरे सामने तीन लाशें पड़ी हुई थीं और मेरे हाथ में पिस्तौल थी। भूत की नाईं मेरी भावना मुझ पर मँडरा रही थी। उसी समय ठोस वास्तविकता से सचेत हो, मैंने वस्तुस्थिति का पर्यवेक्षण किया और दूसरा स्टेशन आते-आते मैं उस कम्पार्टमेंट से खिसक कर सेलून में पहुंच गया। हाईनेस उस समय फ्रांस की सुन्दरियों के मोहक चित्र देख रहे थे और शारीरिक तुलना करने में व्यस्त थे।

कर्नल की बात आगे न सुनने और जो कुछ उन्होंने कहा था उसकी कटु आलोचनात्मक निन्दा करते हुए शान्तिप्रसाद ने कहा—जो कुछ अभी आपने कहा—' जनाब कर्नल साहब, यदि वह सत्य है तो आप इन्सान नहीं, पशु हैं। आप मानवता के कट्टर शत्रु हैं और ऐसे जानवरों के लिए समाज में कोई जगह नहीं होनी चाहिए।'

कर्नल की आंखों में पशुता नाच उठी और दूसरे ही क्षण उसके हाथों में पिस्तौल थी और वह विकम्पित वाणी में कह रहा था—'मैं पशु हूं; जानवर हूँ और समाज के योग्य नहीं हूँ, क्यों मि० शांतिप्रसाद ?'

केप्टिन रविनाथ कर्नल को पहचानता था। उसने तुरन्त पीछे से जाकर कैंची डालकर उसके हाथों को विवश कर दिया। पिस्तौल मैंने उसके हाथों से छीन ली और...'

राज ने अपना कोमल हाथ अपने पति के मुंह पर ले जाकर उन्हें बोलने से मना कर दिया। राज ने सिर्फ इतना कहा—'उफ़ ! कितना भयानक आदमी था वह कर्नल !'

कुमार उस समय भी उसी घटना के विषय में सोच रहा था। वह चुप रहा—एकदम मौन।

स्वाधीनता और....?

हरीश ने लालटैन की बत्ती ऊँची की और घड़ी की ओर देखा तो दो बजे थे। गई रात वह आराम से सो नहीं सका था—भावनाओं के सागर में छटपटाता रहा था—विकल, बेचैन! और इस समय उसकी आंखें बरसात में बारिश से भीगे हुए पेड़-सी बोझिल और झुकी हुई थीं—सिर भारी था और सारा शरीर थकान से टूट रहा था। उसने आलस्य को दूर करने के लिए जमुहाई ली, लेकिन वह अन्तर में छिपी उदासीनता को दूर न कर सका। प्रयास को इस प्रकार विफल जाते हुए देखकर उसने लालटैन की बत्ती फिर छोटी करदी और पलंग पर लेट गया। लेकिन पलंग पर इस तरह निश्चल लेट कर भी वह न तो अपनी बेचैनी को मिटा सका और न आराम से उसे नींद ही आ सकी। भावनाओं का जो एक बार दरिया की लहरों-सा क्रम बंधा तो हरीश उस क्रम से अपने को मुक्त न कर सका। उसका दिमाग़ उस काली भयानक तूफ़ान से भरी रात में तेज़ी से काम कर रहा था! हरीश महसूस कर रहा था कि सब उसकी इच्छा के विरुद्ध लेकिन तेज़ी से चल रहा है। हरीश सोच रहा था—

'स्वतंत्रता को पाने के लिए अनेक वर्षों से जो संघर्ष चल रहा था, उसका अन्त हो गया। जिस आज़ादी की प्राप्ति के लिए हजारों माताओं के लाल कुर्बान हो गए, वही आज़ादी आज उन्हें मिल गई है। और इस मिलती हुई आज़ादी को देखने के लिए ही वह दिल्ली गया था। उस दिन का उसे बड़ा चाव था जबकि ब्रिटिश सम्राट् का प्रतिनिधि देश की शासन सत्ता जनता के प्रतिनिधियों के हाथों में सौंपेगा—जबकि लाल क़िले पर और वायसराय-भवन पर तिरंगा झण्डा हिलोरें लेता हुआ फहरा उठेगा और वायसराय उसे सम्मान से सलामी देगा। उस समय हरीश ने सोचा था, हमारा ग़ुलामी का परिच्छेद खत्म हो गया। कल का परतन्त्रता वाला पग एक करवट लेकर तिरोहित हो गया और हमारे सामने नया युग है—आज़ाद मुल्क है और आज़ाद विचारधारा है। उन क्षणों में हरीश ने भावना-प्रधान होकर कहा था—

'आज़ाद वतन चिरायु हो।'

लेकिन जब वह दिल्ली से स्वतन्त्रता समारोह देखकर लौटा है, तो वह अपने मन की उत्फुल्लता को स्थिर नहीं रख सका। उसे आभास मिला है, जैसे किसी ने उसके मन की शांति और आनंदोल्लास को मक्खन की तरह मथ कर निकाल लिया है और अवशेष में उसके अन्दर छाछ ही छाछ है। घर वालों ने जब हरीश से दिल्ली-समारोह और विराट् जलूसों के बारे में जानना चाहा तो वह केवल एक दो बात इधर-उधर की करके विषयान्तर कर गया। घर की नौकरानी ने जिसने कि इस हरीश को बचपन में गोदी में खिलाया है और सदा उसके बचपन के खेलों में भागीदार रही है, भावना से अतिरेक होकर अपने झुर्रीदार चेहरे पर आशा दीप्त कर जब पूछा—

'अरे हरी, मैं भी सुनूँ सुराज कैसे मिला।'

तो हरीश ने अत्यन्त गम्भीर होकर कह दिया—

'अरी अम्मा, अभी सुराज कहां ? अभी तो······अ·······'

और वह अपनी भावनाओं को दबाता हुआ आगे बढ़ गया था। बुढ़िया ने हरीश के इस व्यवहार और इस आक्रांत स्वर पर बिना कोई टिप्पणी किए विस्मय से आगे बढ़ते हुए हरीश की ओर देखा और न जाने कितनी देर तक किंकर्तव्य विमूढ़ अवाक् उस ओर देखती रही।

हरीश पलंग पर लेटा हुआ था और सोच रहा था कि जो कुछ उसने दिल्ली में देखा, क्या यही स्वराज्य का प्रतीक है ? मन उसका कहता है जो कुछ उसने दिल्ली में देखा वह साक्षात नर्क है। उसने एक ओर वैभव से बढ़ी विशाल दिल्ली में जीवन में ऐसी भयानक [illegible]ता देखी, उसके सामने एक से एक बढ़कर ऐसे बीभत्स चित्र आए थे [illegible]ली का कनाटसर्कस और सेक्रेटेरियट [illegible]ाती इमारतें भी उसका मन नहीं मोह सकी थीं। उसने [illegible] को— जिस हैवानियत को और जीवन की जिस निम्नतर स्थिति क[illegible] आंखों देखा था, उसमें कल्पना के लिए कहीं गुंजाइश नहीं थी। क[illegible] से भरा हुआ यथार्थ उसके सामने था।

हरीश ने पलंग पर करवट ली। हरीश उस कुरूपता को पुनः अपनी आंखों के सामने नहीं लाना चाहता था और उससे बचाव के लिए ही वह यत्नशील था। लेकिन भावना प्रबल थी और सावन में आकाश में एक के बाद एक उमड़ते हुए बादलों से विचार उसका पीछा नहीं छोड़ते थे। हरीश एकटक कमरे में छाए अँधेरे को देख रहा था और उसके सामने दिल्ली में देखे दृश्य आते जा रहे थे—

दिल्ली जंकशन पर उतरतेही उसने स्त्री-पुरुषों तथा बच्चों की एक कतार देखी थी, जो अपना असबाब लिये हुए हैरान इधर से उधर फिर

रही थी। उनके चेहरों पर बेहद परेशानी थी और वे सब के सब घबराये से दीखते थे। ठीक से उनके मुँह से बात नहीं निकलती थी और ज़रा सा हल्ला होने पर वे मुड़कर पीछे देखने लगते थे। छोटे-छोटे बच्चों के चेहरों पर हवाइयां उड़ रही थीं और वे अपने से बड़ों की अंगुलियां अपनी मां के दुपट्टे का पल्ला पकड़े शङ्कित विस्फारित नेत्रों से देखते बढ़े चले जा रहे थे। असबाब की उन्हें अधिक चिन्ता नहीं थी, लेकिन जिस भय से वे प्रताड़ित थे उससे वे सुरक्षा चाहते थे। हरीश ने विस्मय से इस काफ़िले की ओर देखा और पास खड़े टिकिट-चेकर से उसने उन के विषय में पूछा। टिकिट-चेकर ने हरीश को एक बार ऊपर से नीचे तक देखा—

'आ[illegible] नहीं जानते। जनाब, यह पश्चिमी पंजाब विशेषकर लाहौर मिं[illegible] और मियांवाली के वे अल्पसंख्यक हैं, जिन पर वहां के ब[illegible] हैं—इन्हें लूटा है, घरों में आग लगा[illegible] सम्बन्धियों को मौत के घाट उतार दिया है। नन्हें-नन्हे[illegible] बच्चों को ऊपर गेंद की तरह उछाला है और भाले की नोक पर छेद दिया है। इतना ही नहीं, इनकी स्त्रियों का अपमान किया है—बलात्कार और ज़बरदस्ती धर्म-परिवर्तन तो मामूली सी बातें हैं। उन्होंने अपने अन्दर की पशुता को उभार कर हैवानियत को अमल में लाया है, जिसके सुनने भर से रोमांच हो आता है।' कहते-कहते टिकिट चेकर हंसा—'और आप इसके बारे में कुछ नहीं जानते?'

टिकिट चेकर वैसे ही मुस्कराता हुआ चला गया और हरीश स्तम्भित, मूर्तिवत उस बढ़ते हुए काफ़िले की ओर देखता रहा था। हरीश सोच रहा था।

'इस दुनियाँ में ममत्व कहां है–परदुख की कातरता कहां है? मानवता कहां है?' नयी दिल्ली रेलवे स्टेशन से कुतुब रोड की तरफ़ आते समय जो

कुछ उसने रेलवे पुल के नीचे देखा था, उससे उसकी धर्म अधर्म—पाप और पुण्य के प्रति आस्था ही तरंगित लहरों पर नाचती तरिणी सी डोल उठी थी। उस पुल के नीचे उसने साक्षात नरक देखा था—सबल की निर्बल के प्रति सक्रिय क्रूरता देखी थी और उसकी भयानकता को महसूस किया था। उसने अभावों की दुनियाँ में इन्सान को तिल-तिल मिटते देखा था। और उस मौत, उस नरक और अभावों के प्रति एक वर्ग को मुस्कराते भी देखा था। वह यह सब देखकर हवा में हिलते पीपल के पत्तों की तरह कांप उठा था। उसने देखा था—

तीन—तीन और चार—चार स्त्री—पुरुषों की टोलियां पुल के नीचे आ टिकी हैं, जिनके चेहरे अन्नाभाव के कारण जेठ की तपिश में झुलसी हुई पौध से निर्जीव हो गये हैं—आंखों की ज्योति मटमैली पड़ गई है और कोयों के पास निरा गाढ़ा गाढ़ा कीचड़ आ जमा है। उनके हाथ पैर शक्ति के अभाव के कारण कमज़ोर पड़ गये हैं और खून की कमी ने उन्हें वृक्ष से अलग हुई लकड़ी सा सुखा दिया है वस्त्रों के अभाव के कारण उनके जीवन में लज्जा और नारी सुलभ संकोच के प्रतिबन्धों की कहीं गुंजाइश नहीं रह गई है। उसने नारी के शरीर पर अत्यन्त विकृत रूप में लटकते स्तनों को देखा था और उन स्तनों से दूध के लिए जूझते हुए मिट्टी के लौंदे से बच्चों को भी लटकते देखा था। उसने किन्हीं अंशों तक अनावृत नारी को देखा था और उसकी कोमल भावनाएं एक बारगी चीत्कार कर उठी थीं। उन क्षणों में उसने महसूस किया था, यह सारी लज्जा और संकोच के प्रतिबन्ध सम्पन्न वर्ग के ढकोसले हैं, जिनका गरीबों से कोई सरोकार नहीं है। उसने उन अभावों के पालने में पोषित पौध को देखा था और उस कुरूपता को और अधिक न देख सकने के कारण उसने अपनी आंखों को दोनों हाथों से ढक लिया था। तब उसने यही अनुभव किया था कि वह गन्दगी के

किसी ऐसे कोने में दब गया है, जहां से यदि वह जल्द न निकल सका, तो वह उन प्रेतों से भयानक इन्सानों के वमन से उड़ती हुई कड़ी दुर्गन्ध से ही या तो पागल हो जायेगा या सांस घुटकर ही उसका अन्त हो जायेगा। और उस समय उस कुरूपता से पीछा छुड़ाने के लिये वह वहां से पराजित सैनिक की भांति भागा था—बेतहाशा कुतुबरोड की ओर भागता चला गया था।

हरीश ने अपने सिरहाने के तकिए को और अपने सिर के नीचे दबा लिया और फिर करवट बदल कर लेट गया। वह सोच रहा था—

दिल्ली के विषय में उसने क्या सोचा था और एवज में वह तो उस के गले में फांसी का फन्दा ही बन कर पड़ गई थी। कुतुब रोड की ओर भाग कर उसे कुरूपता से छुटकारा मिल गया हो, ऐसी बात नहीं है। कुतुब रोड के नज़दीक तांगा स्टैण्ड के पास आकर वह रुका कि उसनें अपने सामने की गली में १३ और १४ वर्ष की लड़कियों को अपनी ओर भद्दे फ़िकरे कसते, सीटी से सिसकारी भरते और अश्लील भ्रूक्षेप करते हुए देखा। हरीश आरम्भ में उस अद्भुत लीला को देखकर नहीं समझ पाया था कि यह सब क्या है? एक अप्रत्याशित जिज्ञासा से प्रेरणा पाकर वह तांगा स्टैण्ड के सामने वाले बाज़ार की ओर बढ़ गया था। उसने देखा—कम उम्र की लड़कियां गन्दी कोठरी के सामने खड़ी राह चलते लोगों की बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा कर रही हैं। उनकी हरकत से कामुकता टपकती थी—वे हरएक राहगीर की ओर बड़ी आशा से देखती थीं और उसके पास आने पर गन्दे से गन्दे शब्द का प्रयोग करने से नहीं झिझकती थीं। उसने उन कमसिन लड़कियों को देखा था और उसका मन घृणा से भर गया था। वह सोच रहा था—वे नवोन्मुख कलियां आदर्श पत्नी और आदर्श मां बन सकती थीं, उसके स्थान पर वे

नर्क में ला पटकी गई हैं, जहां से उनका बाहर निकलना असम्भव है—सौ बार असम्भव है। यदि पास खड़ी एक नवयुवती ने उसे अपनी कोठरी की ओर खींचने का प्रयास न किया होता तो न जाने कब तक वह वहां कल्पना में डूबता रहता। नवयुवती ने मुस्कराते हुए इस भोले हरीश को अपनी ओर खींचा था।

अरे राजा बाबू इधर आओ... मैंने कहा इधर!

हरीश को जब अपना बोध हुआ तो उसने छिटक कर उस नवयुवती से अपना हाथ छुड़ाया और वह घबरा कर वहां से इस तेज़ी से चला कि चलते चलते दो बार सामने के आदमियों से टकरा गया था, फिर भी मदहोश शराबी सोचता आ रहा था।

हरीश ने फिर करवट ली और घबरा कर उठ बैठा। उसने लालटेन की बत्ती पुनः ऊँची की और घड़ी की ओर देखा, तो चार बज चुके थे। पास के कमरे से मां के भगवत भजन का सधा हुआ मन्द-मधुर स्वर सुनाई पड़ने लगा था और मुहल्ले के आस पास के मकानों से चक्की पीसने की घरघराहट स्पष्टतर हो चली थी। उसने अघाकर अंगड़ाई ली और कहा—

स्वराज्य की भावना अभी खोखली है—अभी उसमें कहां बल है—कहां उसकी सार्थकता है। कल वाली भयानकता आज भी हमारे सामने है—कल वाली विषम समस्याएँ अभी भी हमारे सामने हैं और अभी भी हमें उनसे संगर्ष करना है, बिना संगर्ष के सच्चा स्वराज्य असम्भव है।

उसने कुर्ता पहन लिया और वह टहलने चल दिया। अब उसका मस्तिष्क साफ़ था और वह अपने को उस प्रभात बेला में स्वस्थ अनुभव कर रहा था।

गफूरा मर गया

शहर से बाहर एक लम्बी, चौड़ी लेकिन कंकरीली सड़क के दोनों ओर कुछ खपरैलें हैं कुछ पाटौर हैं, दो-एक अध कच्चे मकान हैं और अनेक फूस की झोंपड़ियां उस भूमि–भाग पर इस प्रकार प्रतीत होती हैं मानो मानव शरीर पर मास के लोथड़े मस्सों के रूप में उभर आये हों—अत्यन्त कुरूप-घृणित-अस्पर्श्य ! यह मुसलमान कुंजड़ों की बस्ती है। इन कुंजड़ों के शहर में दो पेशे—गांवों से काछी द्वारा लाई सब्ज़ी की आढ़त करना या फिर सब्ज़ी की फुटकर बिक्री करना। इनका ही परिष्कृत रूप मेवाफरोश है। इस बस्ती में जो दस–पांच अध–कच्चे मकान दिखते हैं यह उन मेवा फरोशों के ही हैं, जो अपनी विगतस्थिति से कुछ अर्थसम्पन्न हो इस रूप में परिवर्तित हो गए हैं। कुंजड़ों का यह पूरा वर्ग अशिक्षित है और अपने व्यापार की नांव खेने के लिए किसी हिसाब-किताबी मुंशी पर निर्भर रहता है। लेकिन अशिक्षित होते हुए भी यह कट्टर मुल्लापंथी हैं—मज़हब के नाम पर अन्धे-विवेकहीन ! मज़हब के नाम पर आप उनसे खून करवा लीजिए, मतलब यह कि वे धर्म के रंग में इतने रंगे हुए हैं कि वे इस सम्बन्ध में विवेक से काम लेना 'अजाब' समझते हैं—वे एक दम अन्ध-विश्वासी हैं।

इस मुहल्ले में ही गफूरा रहता था। उसके चेहरे पर घनी किन्तु गहूँ की पकी बालों-सी भूरी डाढ़ी थी, चेहरे की त्वचा पर अनगिनती झुर्रियां पड़ गई थीं और नदी की तलैटी की ज़मीन में बनी रेखाओं-सी ही लगती थीं—आंखें कमज़ोरी के कारण कुछ अन्दर को धंस गई थीं और उनमें गाढ़ा कीचड़ जम आता था। कमर उसकी कमान-सी दोहरी हो गई थी—हाथ-पैर उसके अशक्त और सूखी लकड़ी से थे; पल-पल पर उसे दमें का ठसका लगता था और हर ठसके के साथ पीला कफ़ सामने आ पड़ता था। खांसी और दम के ठसके से बदहवास रहने पर भी उससे तम्बाकू पीना नहीं छूटता था। उसने अपनी चारपाई के पास एक 'नारियल' रख छोड़ा था, सिरहाने उसके तम्बाकू की पुड़िया रहती थी और पास में ही मिट्टी की एक अंगीठी, इस गफूरा के दो लड़के हैं—छः नाती हैं, दोनों बहुएं सही सलामत हैं। बड़े लड़के का नाम रहीमा है छोटे का बुद्धू! दोनों ही हाथ पैरों से तन्दुरुस्त हैं—दोनों के चहरों पर घनी काली मूछें ऐंठी रहती हैं, उनके सिरे भाले की नोक-से नुकीले हैं, उनकी चालों में एक पहलवानी लापरवाही है जो दूसरों को चुनौती देती चलती है। बात-बात में दोनों की आंखों में खून उतर आता है—बड़ी-बड़ी आंखें भयानक हो उठती हैं। इन्सानियत से बढ़कर उनके लिए मज़हब है-धर्म के नाम पर वे अपनी ज़िन्दगियां कुर्बान करने के लिए तैयार रहते हैं। जिस दिन सबसे पहले लीग के स्थानीय नेता उस मुहल्ले में प्रचार के लिए गए थे उन्होंने एक ऊँचे बांस में मुहर्रम की फक़ीरी के हरे कपड़ों को सिलवा कर एक झन्डा तैयार किया था और उस झन्डे पर गाढ़ी खड़िया घोल कर अलहिलाल का चिन्ह अङ्कित कर दिया गया था। रहीमा और बुद्धू दोनों ने नेता के स्वागत के लिए फूल-मालाओं का प्रबन्ध किया था—उनके घर के सामने के टूटे तख्त पर एक सफ़े

कपड़ा बिछा हुआ था और उस पर ही इत्रदान रखा हुआ था। मुहल्ले के वृद्ध जन अचम्भे में थे—स्त्रियों में विश्वास इस बात का था कि कोई उनकी इस ज़िन्दगी से बहतर बनाने के लिए आ रहा है—नौजवानों में तमन्ना और जोश था, छोटे-छोटे लड़के इन तैयारियों को देखकर कुतूहल वश हर्ष से तालियां पीट रहे थे और आपस में धमा चौकड़ी मचा रहे थे। नेता आए उन्हें हार—फूल पहिनाए गए, इत्रपान दिया गया, वे सीना से सीना मिलाकर हरेक से मिले। नेता ने गगन—भेदी आवाज़ में कहा—

'बँटकर रहेगा हिन्दुस्थान' उनके साथियों ने मिलकर आवाज़ की—

'पाकिस्तान लेकर रहेंगे।' उस मुहल्ले के किसी आदमी ने इस नारे का मतलब नहींसमझा, यहां तक कि रहीमा और बुद्दू ने भी नहीं। इस बार नेता ने अपना सीधा हाथ हवा में फैराते हुए आवाज लगाई—

'क़ायदे-आज़म !' साथ के आदमियों ने घोष किया—

'जिन्दाबाद !' नेता ने दूने जोश से कहा—

'मुस्लिम लीग !' साथियों ने हुंकार की—

'जिन्दाबाद !' गफ़ूरा अपनी चारपाई से उठकर बाहर आगया था। उसने सुना कि नेता कह रहे हैं—

'यह हिन्दू हमारी हस्ती को मिटा देना चाहते हैं—यह हमारे मज़हब के सबसे बड़े दुश्मन हैं। कांग्रेस सिर्फ़ हिन्दुओं की जमायत है और कांग्रेस सारे मुल्क को हड़पकर हमें गुलाम बना कर रखना चाहती है। हम कभी इस गुलामी को बर्दाश्त नहीं करेंगे ! उनके साथियों ने नेता के आगे कुछ बोलने के पूरे जोश से आवाज़ की—

'हां हर्गिज़ यह गुलामी बरदाश्त नहीं करेंगे। नेता ने और अधिक उत्साहित होकर शुरू किया—

'यह हिन्दू काफिर हैं। हम इनसे इनकी चालों का ज़बरदस्त इन्तकाम लेंगे। क़ायदे-आज़म जनाब जिन्ना साहिब ने इन वजूहातों को मद्देनज़र रखते हुए ही पाकिस्तान की मांग कांग्रेस के सामने रखी है। मेरे भाईयो, अगर हमने अपनी जानो-माल की कुर्बानी करके पाकिस्तान हासिल कर लिया, तो हम इस तरह न सिर्फ मज़हब को ही खतरे से बचाएंगे बल्कि हमारी औलाद को पाकिस्तान में मुफ्त ज़मीनें दी जाएंगी—उनकी तालीम का—खाने-पीने का बन्दोबस्त किया जाएगा। हमारी ज़िन्दगी का दौर ही बदल जाएगा।

गफूरा, जो एक तरफ़ अब तक खड़ा सारी बातें सुन रहा था उसने नेता के पास आकर पूछा—

'क्यों साहब हिन्दू हमारे दुश्मन हैं'

नेता ने लापरवाही से कहा—

'बड़े मियाँ इसमें शक की गुन्जायस नहीं है—कांग्रेस और गाँधी हमें मिटा देने पर आमादा हैं।

गफूरा ने दूसरे ही क्षण अपनी कुबड़ी लकड़ी के बल सीधा होते हुये कहा—

'आप या-तो खुद धोखे में हैं या हमें जान बूझ कर धोखा दे रहे हैं—हिन्दू हमारे दुश्मन नहीं हैं। मेरे बाप और बाप के बाप जिन्हें मैंने अपनी आंखों देखा है कभी उनके मुंह यह बात नहीं सुनी। मैं आपसे इल्तजा करता हूँ' आगे कभी आप यहां ऐसी बातें करने न आया करिये।'

कहते कहते गफूरा को ज़ोर का ठसका आया, कफ़ निकला और वह बिना तेल के दिये-सा शिथिल पड़ गया! मुहल्ले के बूढ़ों ने गफूरा को सम्हाला और अन्दर ले गए। रहीमा और बुद्धू अपने पिता द्वारा नेता के अपमान जनक व्यवहार से दुखी थे और मुँह लटकाये खड़े थे। नेता ने सूखी हँसी हँसते हुये रहीम पर एक ताना कसा—

'मियाँ रहीम, हमने तो पहले ही आपसे कहा था कि हमें यहां बुलाने के पहले यहां लोगों को समझाओ और लीग के रास्ते पर चलने के लिये तैयार करो। रहीम ने दबी ज़बान से कहा—

जनाब, मुहल्ले के तमाम जवान हमारे साथ हैं। यह चंद दक़ियानूसी खयालात के लोग हैं, जिनकी समझ में हमारी बात नहीं आती। रही अब्बा की बात, उसके लिये मैं मुआफ़ी चाहता हूं।

इसके बाद फिर नारे बुलन्द किये गये इस बार नारों में मुहल्ले के नौ जवान भी सम्मिलित हुए। नेता एक वाक्य कहते थे और उसके साथी तथा मुहल्ले के नौजवान उन्हें दृढ़ता पूर्वक दोहराते थे। इस बात को तीन बरस गुज़र गये।

इस मुहल्ले का तीन वर्ष का इतिहास अत्यन्त महत्वपूर्ण घटनाओं से भरा हुआ है। उस दिन के बाद निरन्तर रहीमा और बुद्धू इस बात का प्रचार घर-घर जा कर करते रहे कि हिन्दू मुसलमानों को बर्बाद कर देना चाहते हैं। मुसलमान इस खतरे की घन्टी की आवाज़ को सुनें और संगठित होकर हिन्दुओं के खिलाफ़ जेहाद बोल दें। इस मुहल्ले में एक उस्ताद द्वारा लकड़ी फेंकना सिखाई जाने लगी। मुहल्ले के नौजवानों में मज़हब के नाम पर अद्भुत जोश पैदा हुआ। लकड़ी के बाद तलवार का नम्बर आया, फिर भाला चाकू आदि! बुद्धू मुहल्ले के नौजवानों की जमायत के नेता थे। उनके साथियों ने उनका नाम खलीफ़ा रख छोड़ा था।

बुद्धू खलीफ़ा रोज़ अपने साथियों को हिन्दुस्तान में हो रही सरगर्मियों की खबरें पुरज़ोर लहज़े में सुनाते और उनके साथी उन खबरों को सुनकर तब जाते—क्रोध से उनके नाक के नथने फूल जाते—आंखों की भवें इन्द्र धनुष-सी वक्र हो जातीं। नौजवानों के हाथ बात बात पर

उनकी भुजाओं पर जाते और वे अपने आप ही किसी अप्रत्याशित शत्रु को अपने सामने रख कर अपना बल कूतने लगते। समय के साथ घटना क्रम विस्तार पाता गया। इन तैयारियों के लिए जोरों से चन्दा एकत्रित किया जाने लगा। रोज़ सुबह–शाम नेता लोग सब्ज़ी–मार्किट में पहुंच जाते और अनेक मदों के नाम चंदा वसूल कर लाते।

एक दिन बुद्दू ने आकर साथियों से कहा—

कलकत्ते में दंगा हुआ है। एक बड़ी संख्या में हिन्दू क़ाफिरों को मौत के घाट उतार दिया गया है। उनका जेवर लूट लिया गया है—उन्हें बर्बाद कर दिया गया है।

बुद्धू ने एक दिन फिर आकर कहा—

'अब हमें हाथ पर हाथ रखे नहीं बैठे रहना चाहिए। क़ायदे आज़म ने लड़ाई का बिगुल बजा दिया है। नोवाखाली में हमें जबरदस्ती फ़तह मिली है। हिन्दुओं को हज़ारों की तादाद में मज़हब तब्दील कराया गया है—उन्हें कलमां पढ़ा कर मुसलमान बना लिया गया है। जिन्होंने मज़हब बदलने से इन्कार किया उनका सिर धड़ से जुदा कर दिया गया हिन्दुओं की खूबसूरत औरतें हमारे हाथ आई हैं। और इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ अब हमें यहां हाथ पर हाथ रखे नहीं बैठे रहना चाहिए। हमें कुछ न कुछ शुरू कर देना चाहिये।'

ग़नी और हयात आगे बढ़े—

'बतलाइए हम क्या करें?

खलीफ़ा ने बड़े उत्साह से कहा—

'अन्धेरी गलियों में रात के वक्त छिप कर बैठ जाओ और हिन्दूओं पर दो–चार हाथ साफ़ करदो।'

और दूसरी रात को लोगों ने सुना तीन हिन्दुओं के सिर फट गये, एक राह चलते बूढ़े की कमर में लकड़ी–मार कर उसकी पसली तोड़ दी।

लोग आश्चर्य से सुनते थे और भयभीत होते थे। एक आतंक-सा उन पर छाता जाता था और वे उसके नीचे दबते जाते थे।

शहर में सन-सनी सी फैल गई थी। आपसी विश्वास की भावना मिट गई थी। नित्य लोगों के सामने अफ़वाहें अतिक्रमण रूप लेकर आने लगीं और दोनों जातियों में अविश्वास बढ़ता गया। शहर के जो पुस्तहनी रहने वाले थे और जिन्हें अपनी उम्र हिन्दू मुसलमानों में साथ साथ रहते गुज़र गई थी वे यह सब सुनते थे और दुखी होते थे। उनके लिये यह चीजें बिलकुल नई थीं जिनसे उन्हें कभी वास्ता नहीं पड़ा था वे अपने से छोटों को समझाने की चेष्टा करते थे लेकिन उनकी आवाज़ नक्कार खाने में तूती की आवाज़ सी थी जिसका उन पर कोई असर नहीं पड़ता था। वे कहते थे:—

'जो लोग यह कहते हैं मज़हब खतरे में है, वे गलत हैं। वे अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिये ही ऐसा कहते हैं। इस तरह की आपसी मार धाड़ एक दूसरे के प्रति घृणा फैलाना बुरा है। हम सदियों से साथ साथ रहते आये हैं हमारे आपसी सम्बन्ध ऐसे हैं जिन्हें विच्छेद नहीं किया जा सकता।

लेकिन जिस आपसी कटुता का आरम्भ हुआ, वह बढ़ती ही गई। एक दिन दिन दहाड़े एक हिन्दू की गर्दन इस तरह से उसके शरीर से जुदा कर दी गई जैसे खेत के भुट्टे को काट लिया हो। शहर के हिन्दू इस घटना से क्रोधित हो उठे। दूसरे दिन सुबह ही कई मुसलमान राहगीरों की लाशें गली कूचों में पाई गई—किसी की आंतें बाहर निकल पड़ी थीं—कोई लाश अंग-भंग थी और किसी शरीर को तेज शस्त्रों से गोंद गोंद कर इतना वीभत्स कर दिया था कि उनकी ओर देखते भय पैदा होता था। इसके बाद जिसको जहां अवसर मिला उसने दूसरी कौम के व्यक्ति को—स्त्रियों

को बच्चों को बिना दया ममता और विवेक को अमल में लाये उसके जीवन का अंत कर दिया। यह खू़रेज़ी, हिन्दू और मुसलमानों दोनों की ओर से की गई थी। लेकिन बाद को अपनी अल्पसंख्या का प्रश्न उठाकर मुसलमानों ने आबादी परिवर्तन की बात तै की!

जाड़े के दिन कुंहासे और पानी से घिरे आसमान-हड़कम्पन्न पैदा करने वाली सर्दी-मेह और कीचड़ इन सबने मौसम को इतना बिगाड़ दिया था कि चारपाई पर पड़े इन्सान को रजाई में से हाथ निकालना बुरा मालूम होता था। उन्हीं दिनों बुद्धू ने अपने मुहल्ले में एक रात गुप्त मीटिंग की और लीगी नेताओं का सन्देश सुनाया। बुद्धू मियां रिर्माड की तरह से अपने नेताओं के फर्मान सुना रहे थे:—

हमें यह शहर खाली कर देना चाहिए। हिंदू हुकूमत की वज़ह से यहां हमारी ज़िन्दगी, हमारी इज्ज़त और माल-असबाब को खतरा है। आफ़-ताब की रोशनी में मुसलमान भाई कत्ल किये जा रहे हैं—उनकी दुकानें लुट रही हैं–उनका मज़हब और उनकी हकीकत मिटाई जा रही है। जवानों, यह क़ौम का सवाल है–यह अहले–इस्लाम का सवाल है। जहां हम कम तादाद में हैं वहां से हमें फ़ौरन पास की मुसलमानी हुकूमत में चला जाना चाहिए हमारे इस तरह एक दम शहर खाली कर देने से हिन्दू हुकूमत बदनाम हो जायेगी हर काम में ज्यादती उनकी ही दीखेगी। यह हकूमत को बदनाम करने का सुनहरा मौक़ा है, हमें इससे फ़ायदा उठाना चाहिये।

हरेक ने घर जाकर अपनी बीबी मां और बुजुर्गों से रंग चढ़ा-चढ़ाकर भय दिखलाया और उन्हें चलने के लिये मज़बूर करने लगे। कुछ अपने प्रयत्नों में कामयाब हुये और कुछ नाकामयाब बुद्धू और रहीमा ने भी घर जाकर तैयारी करवायी-ग़फ़ूरा को भी समझाने की कोशिश की लेकिन गफ़ूरा के सामने उनके मज़हब का जोश-क़ौम परस्ती और नेता के

मार्मिक अपीलें कुछ भी असर न कर सकीं। बाद को उन्होंने धमकी दी कि अगर वह उनके साथ नहीं जायेगा तो वे उसे उसी स्थिति में छोड़ जायेंगे। लेकिन गफ़ूरा अपनी हठ से टस-मस नहीं हुआ।

दूसरे दिन सुबह ही प्रयाण की तैयारी हुई। सबसे पहले तांगा जो उस मुहल्ले से रवाना हुआ वह बुद्धू के और रहीमा के बाल बच्चों का था। इसके बाद तो एक के बाद एक! बारह बजे तक मुहल्ले में उल्लू बोलने लगे पाटौरों में ताले लटक गये और मुहल्ला खाली हो गया। यह घटना इसी मुहल्ले में हुई हो, यह बात नहीं थी—मुसलमान आबादी के तमाम मुहल्ले खाली हो गये थे। उनके नेताओं ने उन्हें आश्वासन दिया था कि ज्यादा से ज्यादा स्टेशन पर इकठ्ठे होते ही हिन्दू हुकूमत बदनामी के भय से घबरा जायेगी और उन्हें मनाने के लिये विवश हो जायेगी। भोली अपढ़ जनता इस भेड़िया धसानी चाल में विवेक को प्रयुक्त न कर सकी। लेकिन जिन्होंने समय देखा था जिन्होंने निष्पक्ष हो कर स्थिति को अपने अनुभव की तुला पर तौला था वे इस ग़लत मार्ग पर चलने के लिये विवश न किये जा सके। लोगों ने उन्हें क़ौमी ग़द्दार कहा और उन्होंने बिना विरोध के लाँछनों को सह लिया।

स्टेशन पर स्त्री, बच्चों, अधेड़ों और नौजवानों की एक बड़ी संख्या अपने असबाब के साथ इकठ्ठी हो गई। इस समूह में संख्या उन लोगों की ज्यादा थी जो मज़हब के नाम पर उचित अनुचित नहीं देखते, मात्र किसी के संकेत पर चलते हैं फिर चाहे वे खाई में गिरें या खन्दक में—इसकी उन्हें परवाह नहीं है। जाड़े के मारे इन सबका बुरा हाल था। पानी पड़ रहा था और स्त्रियां अपने बच्चों को अपने बुर्कों में छिपाये जाड़े से काँप रही थीं—चारों तरफ़ हायतोबा मची हुई थी लेकिन वे समझ नहीं पा रहे थे आगे किस तरफ़ क़दम उठाया जाये। पर्दे वाली औरतों का तो

और भी बुरा हाल था। पाखाने और पेशाब के मारे बदहवास हुई जा रही थीं—बच्चे भूख से बिलख रहे थे। वे जो धर्म के जोश में चले आये थे निहायत परेशान थे और पछता रहे थे। लेकिन नेता अपने अल्फ़ाज़ों से दिलजोही कर रहे थे—

'यह मजहब का—हमारी इज़्ज़त का सवाल है। दूसरी जगहों से हमारी मदद का पूरा-पूरा इन्तज़ाम किया जा रहा है परेशान होने की कोई बात नहीं है हुकूमत अब झुकती है—हिम्मते मर्दा मददे ख़ुदा!'

एक-दो-तीन दिन गुजर गये लेकिन हुकूमत अपने निर्णय पर अडिग रही। नेता नहीं समझ पा रहे थे कि जनता में बढ़ते हुए असन्तोष को किस प्रकार शांत किया जाये—इससे आगे के लिये उनके पास भी कोई कार्य क्रम नहीं था वे समझते थे ज़्यादा से ज़्यादा तादाद में आदमियों को उनके परिवार सहित स्टेशन पर ले जा कर डाल देने से हुकूमत दब जायगी और उचित और अनुचित मांगों को स्वीकार कर लेगी। लेकिन यहां तो वह हाल था कि शिकार को गये शिकार होगये। एक दिन बुद्धू को अपने बूढ़े पिता की बड़ी याद आई। वह स्टेशन से रात को अपने साथियों के बीच से चुपके से ग़ायब होकर अपने मुहल्ले पहुंचा। वहां जाकर जो कुछ उसने देखा उससे उसका कठोर पत्थर हृदय भी रो उठा—गफ़ूरा का बुरा हाल था। ठीक भोजन न मिलने से उसकी साँस उखड़ आई थी और सर्दी के मारे बुढ़ापे के हाथ पैर ठिठुर गये थे उसकी अंगीठी की आंच खत्म हो गई थी और राख ठण्डी हो चुकी थी। उसका नारियल औंधा पड़ा हुआ था और गफ़ूरा की खाँसी के ठसके के मारे आंखें बाहर को निकली पड़ रही थीं। बुद्धू ने अत्यन्त आर्द्र स्वर में कहा—

'अब्बा!'

गफूरा जो खांसी के कारण बिल्कुल अशक्त होगया था उसने एक बार बुद्धू की तरफ़ अपनी निष्प्रभ आंखों से देखा लेकिन बोल नहीं सका। बुद्धू और अधिक समय तक चुप न रह सका—

'अब्बा !'

और दूसरे ही क्षण उसने अपने वृद्ध पिता का हाथ पकड़ लिया। गफूरा जो अपने जीवन–दीप को सेहरी के चिराग़ की तरह अन्त होते अनुभव कर रहा था, बुदबुदाया—

'खुदा तुम्हें समझ दे।'

बुद्धू विकल हो उठा। उसने कहा 'अब्बा, जो कुछ हमने किया है अपने मज़हब और क़ौम की बहबूदी के लिये किया है।'

गफूरा ने चारपाई की पट्टी पर लटकते अपने धड़ को ऊपर उठाते हुए एक वेदना मिश्रित हास्य रेखा अपने ओंठों पर स्फुटित करते हुए कहा—

'अरे पगले, मज़हब और क़ौम की बहबूदी नफ़रत फैलाने और खूंरेजी से नहीं होती। मज़हब, न किसी के किये खत्म होता है और न ज़बरदस्ती उसकी तरक्की होती है। और सुनो बुद्धू जो कुछ तुमने किया यह एक बड़ा जबरदस्त धोखा है तुमने इन्सान को इन्सान के खिलाफ़ नफ़रत करना सिखाया है तुमनें इन्सान को इन्सान का खून करने का सबक़ दिया और तुमने अपनी इन हरकतों से इन्सानियत को मिटाने की कोशिश की है तुम इन्सानियत के सब से बड़े दुश्मन हो।

गफूरा कहते–कहते हाँफने लगा। कुछ देर दम लेकर उसने फिर कहा—

'इन्सानियत मज़हब से ऊपर है। जिस दिन इस दुनियाँ से इस इन्सानियत का खात्मा हो जायेगा बेटा बाप का और बाप अपनी औलाद का गला घोंट देगा। मैंने इस दुनियां में खुली आंखों देखा है और मैं अपने अनुभव के बल पर कहता हूँ कि जो यह कहता है कि हिन्दू मुसलमानों के दुश्मन हैं वे मज़हब के मुताविक़ ग़द्दार हैं।

गफूरा की फिर सांस उखड़ आई थी। उसने खकारने की कोशिश की थी कफ़ दुर्गन्ध भरा बाहर आ गिरा। खांसी का ठसका और फिर उठा था। बुद्धू अवाक अपने दम तोड़ते पिता के सामने बैठा हुआ था उसके हृदय में अपने किये को ले कर प्रबल आंदोलन उठ रहा था और उसका विवेक उससे चिल्ला–चिल्ला कर कह रहा था—

बुद्धू सत्य यही है...यही सत्य है।

गफूरा ने इसी समय अन्तिम हिचकी ली और उसका शरीर चारपाई पर गिरे हुये मकान की तरह धराशायी होगया। बुद्धू के नेत्रों से अविरल अश्रु–धारा बह रही थी उसका अन्तःकरण उसे इस मौत का दोषी सिद्ध कर रहा था उसकी भावनाएं उसे धिक्कार रही थीं। इसी समय उसे आभास हुआ कि एक दिव्य–ज्योति उसके मृतक शरीर से निकली जो ऊपर उठ कर प्रकाश पुंज सी दैदीप्य हो उठी उसने देखा कि उसके पिता का कृश शरीर उस ज्योति के बीच में विद्यमान है और उनके बुदबुदाने की आवाज़ उसके कानों में आरही है। इन्सानियत मज़हब से ऊपर है। तुमने अपनी ज़लील हरकतों से इन्सानियत को मिटाने की कोशिश की तुम इन्सानियत के सबसे बड़े दुश्मन हो।

बुद्धू ने हाथों से अपने मुंह को छिपा लिया और वह उस अंधेरी बारिश और तूफानी भयावनी रात में उस पाटौर से भागा और तेज़ी से बेतहाशा भागा पास के वृक्ष उसे पिशाच छाया से लग रहे थे और रात

के भयानक सन्नाटे में उसे मौत का सूना घर महसूस हो रहा था। और वह भागा चला जा रहा था।

सुबह स्टेशन पर लोगों ने आश्चर्य से देखा बुद्धू अपने परिवार को लिये, बिना अपने नेताओं के उलहाने की परवाह किये वापस लौट रहा है।

सनातन का अन्त

घनश्याम ने खाने का आखिरी टुकड़ा मुँह में डालते हुए कहा—

इस दुनियां में यहां वहां, मेरे कहने का अभिप्राय यह है सभी जगह विचित्रता भरी हुई है। और जनाब, यह विचित्रता ही हमारी जिज्ञासा है। यदि मैं यह कहूँ कि ज़िन्दगी में इससे प्रेरणा मिलती, खोज की भावना उपज कर कर्म की ओर बढ़ाती है, तो अनुचित नहीं होगा।

इसके आगे जो कुछ वह कहने जा रहा था, उसे न कहकर वह रुका। तौलिया से उसने मुँह पोंछा और कुछ सोचकर उससे फिर कहना शुरू किया—

'हां, तो मैं आप लोगों से कह रहा था इस विचित्रता के पीछे एक ऐसी शक्ति है जो हमें कर्म की ओर बढ़ाती है। इस शक्ति में बड़ा बल है, जिसका विरोध असम्भव है। आप सनातन को नहीं जानते। लेकिन उसके नाम से आप परिचित हैं। इसी कारण जो कुछ भी किम्बदन्तियां उसके विषय में शहर में, मुहल्ले में और आपस में प्रचलित हैं उसके आधार पर ही आपकी उसके अच्छे बुरे के विषय में राय होगी। इस

'राय' को एक 'तराज़ू और एक बांट द्वारा नहीं तौला जा सकेगा। क्यों कि उनका आधार और वज़न व्यक्तिगत है।

घनश्याम ने कांच की सुराही से पानी गिलास में उड़ेलते हुए बात आगे बढ़ाई—

'आपकी राय और उसके आधार पर सभी विचित्र हैं। सनातन हमारे लिए विचित्र हैं और मैं आपसे सही कहता हूं और दूसरे के लिए जिज्ञासा के कारण हैं।

इस बार वह कहते-कहते हँस पड़ा। हँसा और गम्भीर पड़ गया जैसे भादों की धूप तेज़ी से निकले और फिर तत्काल घने बादलों में समा जाये। हम सभी 'सकते' में आ गए। घनश्याम कह रहा था।

लेकिन मैंने सनातन को पहचाना है। सनातन आज नहीं है—सनातन मर चुका है। लेकिन अगर वह आज हमारे बीच जीवित होता तो मैंने ही गला फाड़-फाड़ कर आप सबसे कहा होता—

'सनातन निर्दोष है। सनातन केवल मानव है – वह केवल एक जिज्ञासा है। उसे आप भला और बुरा नहीं कह सकते।

लेकिन आज यह सब बेसूद है। आज जो सनातन का व्यक्ति है उसका न इस अप्रशंसा और भले बुरे से कुछ बिगड़ता ही है। वह इन चीजों से बहुत दूर निकल गया है, जहां हमारे और आपके बीच की बातें उसे छू नहीं सकती, उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकतीं।'

घनश्याम की आंखों में सनातन की स्मृति तिर आई थी, जैसे हल्की चीज़ पानी में डूब कर पुनः पानी की सतह पर आ जाए। उसने कहा—

मैं आज की परिस्थितियों में सोचता हूँ। जो नितान्त झूठ था—जिसमें लेशमात्र भी सत्य नहीं था, उस भारी असत्य को उसने अपने में प्रश्रय क्यों दिया, क्यों न उसका खुल कर विरोध किया?'

कहते-कहते उसने सिर उठाकर मेरी ओर देखा—

आपने दुनियां में ऐसे अनेक आदमी देखे होंगे, जो अपने बारे में एक शब्द भी अन्यथा नहीं सुन सकते—मानव की प्रकृति ही यह है! लेकिन सनातन इसके विपरीत था। उसने अपने विषय में उड़ती किम्वदन्तियों को अतिशय आकार में सुन कर एक दिन अत्यन्त आर्द्र स्वर में कहा था—

'घनश्याम जो धूप के उजाले और बारिश के पानी को अपने ही आंखों न देख सकें, उनके सामने अपनी सफ़ाई देने से क्या होगा? और मैं कहता हूँ यह भिन्न मतों की संयुक्त दुनियाँ इसी रंग में रंगी है। किस-किस के सामने सफ़ाई देता बैठूंगा। और फिर सबसे बड़ी बात जो अपने मन से कहता रहता हूं—जिस बात का न हाथ न पांव फिर उसकी सफ़ाई ही क्या!

सावित्री को तुमसे अधिक मेरे परिचितों में कोई नहीं जानता और इसी से तुम से कह रहा हूँ घनश्याम, जिन लोगों में आगामी पहचानने की बुद्धि नहीं, वे असहिष्णु बनकर अपरिचित परिस्थितियों के प्रति अपना मत कैसे दे बैठते हैं। मैं कहता हूं इससे ज़्यादा ग़ैर ज़िम्मेदारी और क्या हो सकती है!'

घनश्याम ने फिर कांच की सुराही से पानी गिलास में उड़ेला और एक साथ कई घूंट पीकर बोला—

'आज सनातन के विषय में घर-घर यही प्रसिद्ध हो रहा है कि शहर के धनीमानी का लड़का हो कर परनारी को अपने घर ले आया उस बेचारी का पति रो-रो कर पागल हो गया, लेकिन इस पत्थर के हृदय सनातन में संवेदनाका अणुतक नहीं उपजा। सावित्री का उसने जीवन बर्बाद कर दिया—उसका नारी-अस्तित्व आमूल नष्ट कर दिया। उफ कितना भयानक इन्सान था।'

हम लोगों में से इस बार सतीश ने घनश्याम को बीच में ही रोक कर कहा—

'मेरी समझ में वह इन्सान नहीं शैतान था। जो कुछ मैं सनातन के विषय में अपने परिचितों में सुन चुका हूँ, वह उससे घृणा करने के लिये काफ़ी है। उस घृणा से परिवर्तन की मैं आवश्यकता नहीं समझता।

घनश्याम की घनी भंवों में बल पड़ गये। उसने अपने आग्नेय नेत्र सतीश के चेहरे पर गड़ा दिये और हम सबने महसूस किया, जैसे सतीश उन आंखों से निकलती तपिश में बिल्कुल मोम-सा तरल हुआ जा रहा है। दूसरे क्षण ही घनश्याम ने प्रकृतिस्थ होकर कहा—

'मि० सतीश, अभी आपने इस विस्तृत दुनियाँ को अपनी नज़रों से नहीं देखा, केवल उधार ली दृष्टि से ही सब कुछ देखा है। इसलिये मैं आपको दोष नहीं देता। ऐसे कितने आदमी हैं, जो अपने दृष्टिकोण से स्थितिको नापने-तौलने की कोशिश करते हैं।

सतीश, इस तीव्र आरोप को बिना कुछ आगे बोले पी गया। हम लोग अभी विस्मय से सतीश की ओर देख रहे थे, कि घनश्याम ने फिर कहना शुरू किया—

'सनातन की कोठी के पास ही जहां चौराहा है और उसके पास ही लाल रंग से पुती जो पुलिस चौकी है, सावित्री का पति उस चौकी से लगे दुतल्ले मकान के निचले हिस्से में रहता था। दफ्तर की बाबू गिरी के अलावा उसने एक छोटी-सी पान-बिड़ी की दूकान खोल ली थी, जिस पर वह दफ्तर से लौट कर बैठा रहता था।

कहते कहते कुछ सोच कर घनश्याम मुस्कराया—

इस इन्सानों की विचित्र दुनियाँ में संदेह की महिमा अपरंपार है। यदि आपके पास धन है, तो निश्चित ही संशय आपकी मनोवृत्ति में अनजान ही सम्मिलित हो जायेगा। धन से ही संशयका उदय होता हो

यह बात नहीं है। कभी–कभी सौन्दर्य भी सन्देह का कारण बन जाता है। लेकिन जो स्वयं सौन्दर्य की अनुपम प्रतिमा है, वह अपने को कहां ले जायें? सावित्री के साथ ठीक यही बात थी। जितनी वह सुन्दर थी उतना ही उसका पति कुरूप हुआ था। यदि आदमी सूरत से कुरूप हो तो एक बार असह्य नहीं है लेकिन यदि वह मन का कुरूप हुआ, तो पारिवारिक निर्बाह असम्भव!

घनश्याम के स्वर में कहते कहते एक दृढ़ता-सी आ गयी। उसने कहा—

मैं सावित्री के पति को दोष नहीं देता। जिन परिस्थितियों में उसका निर्माण हुआ यदि दूसरा कोई और होता, तो उसका भी सावित्री के साथ वही व्यवहार होता। रतनलाल सावित्री को मात्र अपनी 'सम्पत्ति' समझता था, और जैसा होता है चहार दीवारी के अन्दर दुनियाँ की नज़र बचा कर रखना चाहता था। उसकी यह प्रवृति उसे सदैव सावित्री के प्रति चौकन्नी रखती थी। उसका अनुशासन दिन प्रति दिन अपने ही मन के चोर के भय से कठोर होता जाता था और सावित्री इस अज्ञेय अपराध के दण्ड-विधान के नीचे सिसक–सिसक कर मौन हो जाती थी। सावित्री नहीं जानती थी किस अपराध की उसे सज़ा दी जाती है—क्यों बिना बात उसे परेशान किया जाता है। लेकिन जैसी साधारण परिवार की स्त्रियों का हाल होता है, वह हरेक अनुचित को सहन कर लेती थी रोती थी लेकिन आवाज़ नहीं निकलने देती थी। नित्य वह एक दृढ़ प्रतिज्ञा करके उठती थी कि आज उन्हें कोई ऐसा अवसर न दूँगी, जिसे लेकर वे बुरी भली बातें करें। लेकिन उसके लाख प्रयत्न करने पर भी रतनलाल की एक मुस्कान के लिये वह तरसती रह जाती थी ऐसे समय उसके मन में विद्रोह की चिनगारियां न चिलक उठती हों, ऐसी बात नहीं थी। लेकिन नारी के अन्दर जो सहनशीलता

और आत्मसात का अन्यतम भाव होता है, वही ऐसे समय में भी सावित्री की रक्षा करता था।

एक दिनकी बात है रतनलाल आफ़िस से लौटा तो देर हो गई थी। जिस समय वह घर में घुसा तो उसने देखा सावित्री घर में नहीं है। बाहर के किवाड़ खुले हुए हैं। रतनलाल ने संशय से वशीभूत हो घर की सूक्ष्म परीक्षा की। प्रत्येक क्षण उसकी बेचैनी बढ़ा कर क्रोध को उभार रहा था। संयम उसके हाथ में नहीं था। उसने सोचा तो क्या नित्य ही वह ऐसी ही गायब मेरी अनुपस्थिति में हो जाया करती है। इस क्रोध के कारण वह बावला हो गया। उसने मोहल्ले में पूछताछ की। पास की तमोलिन से पूछा। उसने मुस्कराते हुये कहा—

'अरे लाला सावित्री कहीं भाग थोड़े ही जायेगी। कहीं काम से गई होगी। घर बैठो, आ जायेगी।'

रतनलाल को तमोलिन का हँसना पसन्द नहीं आया। उसकी मुस्कराहट में उसने अपना अपमान सन्निहित पाया। उसके दिमाग़ का और पारा गरम हुआ। इसके बाद उसने कुछ नहीं पूछा सीधा अपने घर आकर सावित्री की प्रतीक्षा करने लगा। दस मिनिट बाद ही सावित्री घर लौटी। अभी उसने घरके अन्दर ठीक से प्रवेश भी नहीं किया था, कि रतनलाल सिंह—सा दहाड़ा—

'हो आई यार के घर!'

सावित्री का मन इस अनौचित्य से विक्षुब्ध हो उठा। आज पहली बार उसके हाथ से सहन शीलता जाती रही। उसने एक बार रतनलाल की वक्र त्योरियों की ओर देखा और दूसरे क्षण उसने दूने ज़ोर से कहा—

'जो मुंह में गू—गोबर आया बक दिया।'

रतनलाल ने अपने दोनों हाथ नचाते हुए कहा—

'अरी वाहरी सतवन्ती ! चली वहां से कालिख मुंह पर थोप कर मुझे उपदेश देने। यह गू–गोबर अपने यार के मुंह में भर, जहां दुपहरिया भर गायब रही है। मैंने औरतों के बहुत सफल दलाले देखे हैं।'

और वह तन कर बैठ गया। सावित्री प्रत्युत्तर देने की बात सोच ही रही थी कि सनातन ने आवाज़ दी ! सावित्री बाहर निकल आई और साथ ही क्रोध से आग बबूला रतनलाल। सनातन ने हँसते हुए कहा–

'आप जल्दी में अपना अध–बुना स्वेटर घर पर छोड़ आई थीं, घर में इसे वापिस भेजा है।'

सावित्री ने उसे हाथ में लेते हुए कहा—

'अरे मुझे तो इसकी याद ही नहीं रही। आपको व्यर्थ में कष्ट उठाना पड़ा।'

सनातन स्वेटर देकर चला गया। रतनलाल ने कुढ़कर कहा—

शिकार बुरा नहीं फांसा है। हाथ पैरों से तन्दुरुस्त है, सुन्दर है, बातचीत से भला है और सब से बड़ी बात यह घर का आसूदा है। भला मेरा इसका क्या मुक़ाबिला ! अरे वही तो मैं कहूँ कहां से इतनी अकड़ें समा गयीं।'

रतनलाल उस दिन लड़ने पर आमादा था। सन्देह ने विश्वास की जगह ले ली थी उसने कड़क कर कहा—

'और अब तू मेरी बात सुन ले। अपना यह सौन्दर्य लेकर अपना काला मुंह कर जा। मुझे तेरी ज़रूरत नहीं।'

सावित्री इस वितंडावाद से कुपित अवश्य थी लेकिन इस बीच उसका धैर्य लौट आया था और वह चीज़ को सुलझाना चाहती थी। उसने विनम्र स्वर में कहा—

'क्यों किसी को बदनाम करते हो। आज उनकी पत्नी के बच्चा हुआ है। बिचारी तकलीफ़ के मारे बेहाल थीं। मुझे बुलाया जल्दी जल्दी चली गई।'

रतनलाल ने उसी कठोरता को अपनाते हुए कहा—

'चली वहां से सफ़ाई देने। मैंने ऐसी पति मार कर सती होने वाली अनेक स्त्रियां देखी हैं। तुझे अपने रूप का घमण्ड है, तो उसे ही बेच और मौज कर।'

सावित्री ने आगे कुछ नहीं कहा। रतनलाल बड़-बड़ाते चला गया।

घनश्याम ने सतीश की ओर देखा—

मि० सतीश, अभी आपने सनातन के लिए कहा था कि वह शैतान था। अब जरा जिसे आपने शैतान कहा उसकी शैतानियों के बारे में भी सुन लीजिए—

रतनलाल चला गया तो एक सप्ताह तक नहीं लौटा। सावित्री का एक ही सप्ताह में बुरा हाल हो गया। मानसिक सन्ताप के कारण वह बीमार पड़ गई। बुखार तेजी से रहने लगा। घर में कोई था नहीं, जो उसकी सेवा सुश्रूषा करता और बाहर के किसी जाने पहिचाने को उस घटना के बाद बुलाने का साहस नहीं होता था। विवश नारी अपने में ही सिसक-सिसक कर रह जाती थी। एक दिन सनातन को बुलाकर उसकी पत्नी ने कहा—

'इधर सावित्री को नहीं देखा। अगर आप उधर जायें तो उसे अवश्य बुला लायें। सनातन उसी दिन बाज़ार से होता हुआ सावित्री के मकान की तरफ़ से निकला। घर जाकर जो कुछ सनातन ने देखा, उससे वह एक बारगी घबरा गया। सावित्री अपनी शैय्या पर लेटी हुई थी,

बुखार की तेजी से उसकी आंखें लाल थीं और धूमिल लटें बिखरी हुई थीं, उसकी आंखें शून्य में तिर रही थीं और उसके चेहरे पर वेदना की एक ऐसी गहरी छाप अंकित हो गई थी, जो किसी भी व्यक्ति की कोमल अनुभूतियों को उभार कर समवेदना प्रकट करने के लिए विवश कर सकती थी। उसकी आंखों के नीचे काली झाइयां पड़ गयी थीं और जीवन के प्रति अनाशक्ति की भावना उसकी आंखों में एक मौन सन्देश दे गई थी। जिस समय उसने सनातन को देखा, वह घबरा गई। फिर सम्हल कर उसने दोनों अपने कमज़ोर हाथों को हिला कर प्रणाम करने का यत्न किया। सनातन ने देखा इस प्रयास के साथ ही उसकी आंखों से आंसू ओस-कण-से अनेक ढलक गए हैं। सनातन ने सम्हल कर कहा—

उफ़! आपका यह हाल हो गया और आपने इतने नज़दीक रहते हुए भी हम लोगों को कोई सूचना नहीं दी।' सावित्री मुस्कराई! सनातन ने फिर कहा—

'घर में कितना मैला इकठ्ठा हो गया है। दिखता है कई दिनों से घर में झाड़ू तक नहीं लगी है। रतनलाल जी कहां गये ?

सावित्री के चेहरे पर कठोरता आ गई थी। लेकिन फिर सम्हल कर मन्द आवाज़ में उसने पूछा—

'बहिन और बच्चा तो मज़े में हैं।'

सनातन अपने विचारों में इतना तन्मय हो गया था कि सावित्री की बात ठीक से समझ न सका। जिस वातावरण में वह वहां खड़ा हुआ था वह सब कुछ उसके लिये अनोखा था। उसने किताबों और उपन्यासों में अनेक दुखान्त किस्से पढ़े थे लेकिन जिस 'वर्तमान' का उसे सामना करना पड़ रहा था, यह सब कुछ उसके लिये निरा अनोखा था। उसके सामने जीवन की भयानक कुरूपता थी; जिसने उसके अन्दर

एक सिहरन पैदा कर दी थी। कोमल भावना उससे कह रही थी—अरे सनातन, यह जो तेरे सामने नारी पड़ी है, यह सदेह दुःख' है—वेदना, इसका स्वर है और कर्म इसका अभाग्य है। यदि तू अभिशाप से बचना चाहता है, तो अपने प्राण बचा कर इस कुरूपता से भाग, कहीं ऐसा न हो यह तेरी ही 'छाया' बन तेरा पीछा करना आरम्भ करदे। तब तो तुझे अपने प्राण बचाना भी मुश्किल पड़ जायेगा। जिस यथार्थपर तू सोच रहा है इसमें असीम वेदना है, फिर किसके 'यथार्थ' को तू अपनी वास्तविकता बनायगा। इस महिमामयी-प्रकृति के विधान की धाराएँ और उपधाराएँ दुर्बोध और अगम्य हैं। जिसने स्वरक्षा से बढ़कर पर दुःख कातरता की ओर पग रखा, कि वह अनेकानेक विपत्तियों में मकड़ी के जाल में फँसी मक्खी-सा फँस गया। फिर दुख और दुर्भाग्य से पीछा छुड़ाना असम्भव है रे सनातन—नितान्त असम्भव!

लेकिन सनातन के ऊपर जो प्राणवान इन्सान था उसने अपने अन्दर इस दुर्बलता को दबा दिया। उसने सावित्री से कहा—

आज घर में आपकी याद कर रही थी यदि आज जबरदस्ती उन्होंने मुझे आपके यहां न भेजा होता तो आपकी तबियत का हाल ही न मालूम होता, देखिए तो आप कितनी कमज़ोर हो गई हैं।'

सावित्री, सनातन के इस सौजन्य और समवेदना से विह्वल हो उठी। अभी-अभी जो आंसुओं की धारा उसके कपोलों पर दो मोटी रेखाएं बना कर रुक गई थी, पुनः प्रवाहित हो उठीं। सनातन कमरे की चीज़ों की तरफ़ देखते हुए कहता ही गया—

'मुझे तो रतनलाल जी पर क्रोध आता है। अजीब आदमी हैं, पत्नी घर में बीमार पड़ी है और हजरत उसकी दवा और पथ्य से बेखबर गायब हैं। कोई भला बीमारी में अपनों को इतनी गन्दगी में डाल रखेगा।

सावित्री मन में फोड़े-सी टीस को दबाकर मुस्कराई—

'यह सब तो भाग्य का खेल है सनातन भय्या, मैं किसे दोष दूं ?

सनातन कुछ समझा नहीं, वैसे ही सावित्री की ओर देखने लगा। उस समय उसे लगा कि सामने की नारी के अन्दर की भावना प्रबल हो उठी है। इस भावना में कुछ ऐसा रहस्य छिपा हुआ है जिसे वह खोलना नहीं चाहती। लेकिन फिर भी विद्रोह की चिनगारी जो सुलगते-सुलगते एक भयानक रूप ग्रहण क[illegible] अब उसकी दाह को सहते रहना उसके बसकी बात नहीं है। [illegible]ह गम[illegible]ड़ गई। उसने सनातन की ओर देखते हुए कहा—

'आज सात दिन से उ[illegible]जिस दिन आप मेरा स्वेटर लौटा कर गये उसी दिन से ग़ायब हैं। मैं मर गई हूँ या किस-किस स्थिति में हूँ इसकी उन्हें कोई परवाह नहीं।'

सनातन ने कहा—

'सात दिन से !'

आश्चर्य, उसी आंखों से गोद के बच्चे की तरह बन्धन तोड़ कर बाहर निकल पड़ रहा था।'

घनश्याम ने कहा—

'यदि इन्सान होकर किसी दुनियां के प्रति समवेदना प्रगट करना जुर्म है, तो निःसन्देह सनातन ने गुनाह किया है, क्योंकि उसने सावित्री के दुख को बंटाना चाहा। उस दिन जब सनातन लौट कर अपने घर गया और पत्नी से सारा हाल कहा तो पत्नी ने अनुरोध करके पीड़ित सावित्री को घर पर ही बुलवा लिया और उसके अलग रहने की व्यवस्था करवा दी। सावित्री स्वस्थ हो गई। लेकिन एक दिन रतनलाल विचित्र ढंग से बाज़ार में घूमता पाया गया—उसके बाल बिखरे हुए थे, बदन के कपड़े फटे हुए थे और वह बाज़ार में चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा था—

इन बड़ी हवेली वालों की करतूत सुनो भाइयो ! इस सनातन ने जबरदस्ती मेरी पत्नी को घर में डाल लिया।'

इसके बाद वह रोता था, फिर हँसने लगता था और आगे बढ़ जाता था। सनातन को जब इस बात का पता चला तो उसने रतनलाल को बुलवाना चाहा लेकिन उसके बाद आज दिन तक उसका पता नहीं लगा।

सावित्री, सनातन के लिए सदे[illegible] गई। लेकिन उसने या उसकी पत्नी ने कभी एक [illegible] शब्द नहीं [illegible]। उसके शरीर में इस घटना से घुन लग गया [illegible] सब जानते हैं सनातन परसाल मर गया

घनश्याम ने इस बार ज़रा कठोर होकर मि० सतीश की ओर अपने सीधे हाथ की एक अंगुली उठाते हुए कहा—

'और मि० सतीश, चूंकि आप में चीज़ों की तह तक जाकर अपने मौलिक दृष्टिकोण से परिस्थितियों के पर्यवेक्षण की क्षमता नहीं है इसी कारण आपने सनातन को शैतान कहा और......

मैंने महसूस किया घनश्याम क्रोध के आवेश में अपना विवेक खोता जा रहा है अतएव उसे बिना आगे बोलने का अवसर दिये मैं ज़बरदस्ती उसे उस कमरे से बाहर खींच ले गया।

17 APR
ALLAHA

ये इन्सान, हम हैवान

शहर से बाहर एक मन्दिर है, जिसकी प्राचीन प्राचीरें ढह कर ढेर हो गई हैं। जगह–जगह पर आस–पास के मिट्टी के ढेर शरीर पर फोड़ों से बन गये हैं। मन्दिर के पास ही कुआं है जिसकी जगह ऊबड़–खाबड़ बिना जुते खेत की भूमि–सी हो गई है। मन्दिर से शहर की बस्ती लगभग एक मील होगी। जिस समय इस मन्दिर का निर्माण किसी व्यक्ति ने धार्मिक भाव से प्रेरित हो कर करवाया होगा उस समय निस्संदेह यह जगह बड़ी सुहावनी और बसी हुई होगी। लेकिन आज केवल विगत वैभव के कुछ अलक्षित चिन्ह ही देखने को मिलते हैं और वे भी अत्यन्त करुणाजनक स्थिति में ? मूर्ति उसमें एक भी नहीं है। लेकिन मन्दिर की निर्माण–कला से प्रतीत होता है कि मध्यकालीन–युग का है उसमें तेलगू देश की शिविर तथा स्तूप की आकृति सन्निहित है। पुरातत्व–विज्ञान से यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि मन्दिर विष्णु का है और मध्यकालीन मूर्ति–कला का एक श्रेष्ठ उदाहरण है।

इस निर्जन स्थान में स्थित मन्दिर में कुछ दिनों से भिखमंगों की एक टुकड़ी आ बसी है, जहां सुबह और शाम के समय को छोड़कर वे

चरागाह में बकरियों की तरह पड़े रहते हैं। सभ्य-संसार के खिलते हुए उपवन में ये घिनौने, अस्पृश्य-रोगों से पीड़ित खानाबदोश भिखमंगे ठीक नाली के किल-बिल किल-बिल करते कीटाणुओं से ही प्रतीत होते हैं।

निर्मल ने बायें हाथ की हथेली पर दाहने हाथ का घूंसा मारते हुए आवेश में कहा—'और जनाब, मैं आप से सच कहता हूँ यह बेगर-प्राब्लम (भिखमंगों की समस्या) देश के लिये एक विषम प्रश्न है। यदि निकट भविष्य में इसका निराकरण नहीं किया तो जिस तरह समय के साथ हमारे देश से जंगल विलीन होते जा रहे हैं, हमारी सदियों से पली सभ्यता इन भिखारियों के बढ़ते करुण-क्रन्दन में चोट खाकर चीत्कार कर उठेगी, मिट जायेगी। साहिब, आप महसूस करें न करें, लेकिन आपकी सभ्यता, आपकी संस्कृति इस वर्ग के कारण खतरे में है। आपकी प्रगति में एक बहुत बड़ी बाधा उपस्थित हुई है।'

'यार वाक़ई हम तुम्हारी इस सूझ के क़ायल हैं।'

उसने अपनी अधजली सिगरेट को ऐश-ट्रे में झाड़ कर एक कश लिया और फिर मुस्कराते हुए कहा—'तो सचमुच हमारी संस्कृति, हमारी सभ्यता और प्रगति खतरे में है।'

हम सब ने महसूस किया कि विपिन निर्मल को बना रहा है। मैंने उसे और अधिक बोलने का अवसर न दे कर कहा—

'विपिन, वास्तव में निर्मल ने हमारे सामने एक नई समस्या रखी है। इसे बातों में नहीं टाला जा सकता। हमें इस पर विचार करना होगा और ज़रूरत यथार्थ अध्ययन की भी होगी।'

इसके बाद विपिन का विनोद उड़ते धुएं के बादलों-सा तिरोहित हो गया। वह एक टक मेरी गम्भीर मुद्रा की ओर देखता रह गया। मैंने कहा—

'निर्मल, लेकिन यह तो तुम्हारे ज्ञान की बात हुई। एक बात बताओ कभी तुम्हें उन लोगों के टच (सम्पर्क) में भी आने का अवसर मिला है, निर्मल ने मेरी ओर सूनी आंखों से देखा। फिर तत्काल ही साहस कर बोला—

अनुभव के लिए प्रयास करना होगा। और अभी उसके लिए मेरा ज्ञान शून्य है।

मैंने इस बार विपिन की ओर इंगित कर कहा—'तुम एफर्टस (प्रयास) करने के लिए तैयार हो?'

विपिन ने दूसरी सिगरेट जलाते हुए मेरी ओर इस भाव से देखा, मानो कह रहा हो—'अजी कहां खांमखां के झमेले में पड़ रहे हो।' और फिर एक कश खींच कर कहा—

'यह सब वाहियात है। दुनियां जिस रफ्तार से चल रही है, वैसी ही चलती जायगी, कोई उसकी प्रगति में वाधा न डाल सकेगा। मैं इन झमेलों में खुद को नहीं डालना चाहता। दूसरों के लिए रास्ता खुला है।

और वह फिर रुका नहीं, उठकर चला गया। मैंने निर्मल से कहा—

तो मि० निर्मल कुमार हम दोनों ही मिलकर इस अवहेलित-वर्ग का अध्ययन करेंगे।'

सुबह का समय था। सूर्य की सुनहली किरणें ऊँचे वृक्षों की चोटियों को स्पर्श कर नीचे उतरती आ रही थीं।

मैंने कहा—

इस नाले के उस तरफ़ जहां ऊँचा टीला है उसके पीछे ही विष्णु मन्दिर है। इस समय हम वहीं चल रहे हैं। निर्मल कुछ बोला नहीं, डग भरता केवल मेरा अनुसरण करता रहा। मैंने कुछ दूर चलकर पूछा—

'क्या बजा होगा ?'

निर्मल ने हाथ की रिस्टवाच को देखकर उत्तर दिया—'इस समय सवा सात बजा है और हमें अधिक से अधिक नौ बजे वापिस लौट आना चाहिए।'

मैंने सिर हिलाकर सहमति प्रगट की।

थोड़ी देर में हम मन्दिर के सामने आ गए। भिखमंगे टूटे जीर्ण मन्दिर से धूप खाने के लिए मैदान में आ बैठे थे, जो चलने फिरने के योग्य थे वे ऊंचे टीलों पर जा बैठे थे। इन अर्ध–नग्न भिखमंगों की यह टोली दूर से वानर सेना–सी प्रतीत होती थी। निर्मल ने दूर से ही भिख-मंगों की ओर देख कर आर्द्र कण्ठ से कहा—

'केदार, ज़रूरत इस बात की है कि किस प्रकार इन नंगे–भूखे प्राणियों को कल्चर (सभ्यता) का जामा पहिनाया जाये ?

उसकी आंखों से करुणा रिस पड़ी थी और वह केदार का सहारा लेकर खड़ा हो गया था। केदार ने निर्मल की बांह झकझोरते हुए कहा—

'जनाब, इमोशन (भावुकता) से काम नहीं चलेगा। आगे बढ़िए और इन से सम्पर्क स्थापित कीजिए—इनकी अन्दरूनी बातें जानने की कोशिश कीजिए। आप यह क्यों भूलते हैं, इनके भी अपने विधान हैं—इनकी भी अपनी संस्कृति है। आप उसे मानें या न मानें।'

अब तक हम दोनों भिखमंगों के निकट आ गए थे। भिखमङ्गों के बच्चे हम दो बाबुओं को अपनी बस्ती में देख कर ठीक उन कुत्तों की तरह चीख-चीखकर शोर गुल मचाने लगे थे जो अपनी गली में किसी अपरिचित को देख कर भौंक-भौंककर एक विशेष वातावरण सूचित कर देते हैं। नब्बा ने कान खुजाते हुए गफूरा से कहा—

'अरे बाबू जी! ले खोल दे अपने घाव की पट्टी और पकड़ मेरा हाथ !'

गफ़ूरा ने तत्काल अपने सर में बंधी पट्टी खोल दी और हथेली के बराबर ईंगुर-सा सुर्ख़ घाव धूप में चमक उठा । गफ़ूरा को इस तरह बाजी मारता देखकर करीमन ने रफ़ीक को टुनिहाया—'मुँह जला खाने के लिए ठिठोली कर करके खा जाएगा, और मांगने के वक्त बगलें झांकता है ।'

रफ़ीक़ ने करीमन की तरफ़ कनखियों से तरेरते हुए कहा—

'मां क़सम तुम्हारी इन्हीं बातों पर तो हम दिलो-जान से फ़िदा हैं ।'

बुढ़िया फरीदा ने सर से सफ़ेद बालों में चिकुटी पर जुआं नाखून पर रखकर दूसरे नाखून से किया 'चट !' और तभी बाबुओं को अपने सामने देखकर करुणोत्पादक स्वर में चीख-चीखकर आशीष देने लगी—

'अरे अल्लाह वालो कुछ इहु बुढ़िया की भी सुने जाओ। खुदा तुम्हारे रोज़गार में बरक़त दे ।'

भला कल्लू इस स्वर्ण अवसर को किस प्रकार हाथ से खोता । अपने पूरे एक दर्जन छोटे-बड़े लड़कों को ले निर्मल के सामने आ खड़ा हुआ—

'अल्लाह तुम्हारा भला करे ।'

निर्मल ने महसूस किया कि वह साक्षात् नर्क में खड़ा हुआ है । भिखारियों के बदन से उड़ती कड़ी दुर्गन्धि के कारण उसका दिल उमसने लगा था । और वह इस निकृष्ट, गन्दी चीख पुकार से अपने सर भारी बोझ-सा लदा अनुभव कर रहा था, जिसका और अधिक वहन करना उसके लिए असम्भव हो गया था । कल्लू के सबसे छोटे बच्चे ने तुतलाते हुए कहा—

'हमाले बाबू जी.... ..ओ बाबू जी ।'

उसने अपना दुबला-पतला हाथ सर के पास ले जाकर सलाम किया—

'एक पैछा सरकार......!'

दूसरे ही क्षण वह अपना हाथ अपने बढ़े हुए पेट के पास ले जाकर बोला—

'इस पापी पेट के लिए...अल्लाह वालो !'

निर्मल ने सोचा, कितनी दयनीय स्थिति है बिचारों की ! भावना उसे अपने में नाग–पाश–सी जकड़ती जा रही थी। मैंने तभी उनसे पूछा कुछ फुटकर पैसे भी लेकर चले हो ?'

निर्मल के भावना–बन्धन शिथिल पड़े, तो सचेत हुआ। बोला—

'मेरे पास पैसे नहीं छोटी रेजगी है।'

मैंने कहा—'यार वही निकाल। चलते समय फुटकर पैसे लेने की याद ही नहीं रही। दर्शन को चले और प्रसाद ही नहीं ले चले।' निर्मल ने कुछ इकन्नियां निकाल कर मेरे हाथ पर रख दीं। और एक इकन्नी कल्लू के लड़के को दे दी। कल्लू के लड़के को एक इकन्नी मिलते ही भिखमंगों का झुण्ड उनकी तरफ बढ़ आया। रफ़ीक़ ने करीम के गले में अपनी दाहिनी बांह डाले लँगड़ाते हुए बढ़ कर कहा—

'सरकार ! परवर दिगार झूठ न बुलावे, हम दोनों तीन दिन से फ़ाका कर रहे हैं ! अल्लाह काम ही नहीं करता।'

और उसने चिथड़े सी कमीज़ के सामने वाले भाग को ऊपर उठा कर पिचका पेट और रस्सी सी सल्वटें खाईं नसें मुझे दिखाईं। करीमन ने भरे गले से कहा—

'सरकार....माई बाप ! खुदा तुम्हारी रोज़ी रोज़गार में बरक़त दे। अल्लाह तुम्हें नन्नी–सी दुलहिन और फूल सा बच्चा गोद में खेलने को दे।'

वे आगे बढ़ ही रहे थे कि कसेरू ने उसे धक्का देकर कहा—

'अरी दूर भी हटेगी या सरकार के सर पर ही चढ़ कर बोलेगी।'

और फिर निर्मल की तरफ़ आगे बढ़ते हुए कहा—'यह पेट पापी नहीं मानता। और बढ़े हुए पेट को ढोल सा पीट कर आगे बोला—'परवरदिगार भी ग़रीबों का साथ नहीं देता।' फिर आसमान की ओर संकेत करता हुआ कहने लगा—

'... वह जानता है हुज़ूर ! अभी पांच दिन हुए नन्ही–सी जान भूख से तड़प–तड़प कर मर गई।'

अब उसकी आंखों में आंसू थे—

'इन्हीं हाथों से उसे क़ब्र में सुला आया हूँ। और......'

कुर्ते की फटी बांह से आंसू पोंछता हुआ वह कहता गया—और, उसकी मां भी अब घड़ी–पल की हो रही है माई बाप ! पूरे एक हफ्ते से उसके मुंह में अन्न का दाना नहीं गया है।' कहते–कहते उसने अपनी सूनी आंखें निर्मल की आकृति पर फैला दीं। करीम से यह बरदाश्त नहीं हुआ। दूर से ही चिल्लाया—

'अजी अल्ला वालो, झूठ बोलता है साला'। पूरा चार सौ बीस है। कहता है एक हफ्ते से बीबी के हलक के नीचे अन्न का दाना नहीं उतरा है और कल रात साले दोनों चौखट में ताड़ी की चुसकी लेते रहे हैं।' और बिना रुके अपनी बात की ताईद में उसने रफ़ीक़ की ओर देखा—

'क्यों भय्या, कल रात दोनों ही साले भिन-भिनाते रहे हैं न ?'

कसेरू ने पलट कर करीम की तरफ़ देखा, जैसे एक बित्ता निगल जायगा। करीम फिर भी बाज नहीं आया। 'अब लाल पीली आंखों से क्या देखता है। क्या हम तेरे दबैल हैं। अरे मांगता है तो सीधी तरियां मांग। यह क्या क़बर और मुर्दा सुलाने लगा' और फिर कान से अधजली बीड़ी को जला कर कश लेकर बोला—'भय्या मेरे, सीधे तरियां से मांग।'

घूम कर उसने हुसेना की तरफ़ देखा—

'क्यों बादशाह, ठीक कहूं न !

सादिक़ जिसका सारा शरीर कोढ़ के चितकबरे दागों से भरा हुआ था, कान के पास के नासूर से पीव मिश्रित पानी अधिक पके आम के रस सा टपक रहा था, आंखें कीचड़ में बुरी तरह सनी हुई थीं और एक पांव उसका घुटने के नीचे से ग़ायब था, लंगड़ाता हुआ पास के टीले से लपका—'खुदा का क़हर बरपे इन लुच्चों पर ! मांगते हैं या दिन दहाड़े डाका डाल रहे हैं। वो तो यूं कहो बाबू हमारे दरिया दिल हैं।'

और उसने झुक कर अपने हाथ से निर्मल के सामने की मिट्टी उठा कर अपने माथे से लगाई। फिर अपने साथियों की ओर घूम कर तैश के साथ बोला—

'साले हो, ज्यादा धमा-चौकड़ी मचाई तो हथकड़ी भरवा देंगे। देखते नहीं जंट के लड़के हैं—बड़े साहबों के ?' और फिर उसने मैल से पीले बदबूदार दांत केदार की तरफ़ निपोर दिए। इसके बाद उसने सांप की तरह से करीमन की तरफ पलटा खाया—

'बढ़ती है यहां से या लगाऊं एक लप्पड़ ।'

और उसने बायां हाथ हवा में ताना, कि रफ़ीक़ चिल्लाया—

'जबान संभाल कर बात कर। बड़ा आया हाथ तानने वाला। हम तो कहते हैं कौन बोले टुकड़े चोर से और आला हजरत हैं कि सिर पर ही चढ़े आ रहे हैं।'

रफ़ीक़ का सहारा पाकर करीमन ने हाथ नचा कर कहा—

'अब मरद का बच्चा है तो मुझे मार कर ही देख। मैं भी समझूंगी किसी सूरमा से पाला पड़ा था।'

फिर विगत की स्मृति दिलाती हुई बोली—'क़बर में पैर लटकाये हैं फिर भी दिल की जली-भुनी ठण्डी नहीं हुई। यह नापाक मुझ से सगाई

करेगा।' और मुंह बिदोर दिया। फिर फटे दुपट्टे को ठीक से ओढ़ती हुई केदार से बोली—'सरकार मुझे रखैल बना कर रखना चाहता था। बताओ मियां के हाथ–पैरों में दम नहीं और मियां दिल मजनू का लिए फिरते हैं। सादिक़ ने दांत पीस कर करीमन की तरफ़ देखा। लेकिन करीमन फिर भी चूकी नहीं—

इतनी जूतियां रसीद करवाऊंगी कि टांट पर एक भी बाल नहीं रहेगा दिल जला आशिक, साये-सा पीछे-पीछे फिरता है—निगोड़ा। ले तू ही बाबू जी से वसूल कर, हम चले।'

और तन कर गर्व से उसने एक बार रफ़ीक़ की तरफ़ देखा और आगे बढ़ गई। सादिक़ ने इस बार निर्मल की तरफ़ देखते हुए कहा—

देखा बाबू जी, आपने साली की अकड़! सूखी लकड़ी सी ऐंठी जाती है। मैं भला इस कुतिया को मुंह लगाऊंगा, अभी जवानी पर इतराती फिरती है तीन दिन बाद कोई कौड़ी को भी नहीं पूछेगा।'

केदार ने उकता कर निर्मल की ओर देखा। निर्मल ने विवशता में पराजित आंखों से मेरी ओर! और उसने धीरे से कहा—समय हो गया अब चलना चाहिए' चलते समय एक-एक इकन्नी दोनों ने हरेक को दी। रफ़ीक़ और करीमन को भी वे इकन्नियां देना नहीं भूले जो कुढ़ कर एक पेड़ के तले बैठे थे और चने नौन की ककड़ी के साथ चबा रहे थे। निर्मल ने हतोत्साहित स्वर में मुझ से कहा—केदार 'अब क्या इरादा है?'

मैंने हँसते हुये प्रत्युत्तर दिया—

'पहले तुम अपनी कहो?'

निर्मल ने तब मन की बात छिपाई नहीं स्पष्ट कह दिया—

'इन लोगों में जाना मेरे बस से बाहर है।'

मैंने आत्म निर्णय के स्वर में कहा—

'चित्र की आउट लाइन तुमने खींची यथा विधि रंग मैं भर दूंगा।'

दूसरे दिन केदार फिर भिखमंगों की बस्ती में गया। उसने अब मे प्रण किया है जब तक भिखमंगों को खोज बीन कर वह एक पुस्तक नहीं लिख लेगा, उनमें बैठेगा, गप-शप लड़ायेगा, उनमें और यथार्थ को जानने की चेष्टा करेगा।

केदार के मित्र उसकी किताब की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं—विशेषकर विपिन !

इंटर क्लास वेटिंग रूम

हावड़ा जंक्शन का इंटर क्लास वेटिंग रूम! श्रीकान्त ने अपने सामने के सहस्त्रों विद्युत-दीपों से दीप्त हावड़ा स्टेशन, छोटे-छोटे जन-समूहों के रूप में वहां चलने वाले काफ़िलों और चहल-पहल से भरे प्लेटफार्म की ओर देखा और अनुभव किया कि इस जीवन-रहित शून्य कहे जाने वाले 'हावड़ा' में भी एक गति है—एक जीवन है, जो अपने क्रम से चलता है। उसने टिकट घर के ऊपर लगी गोल घड़ी में देखा तो बारह बज चुके थे। लेकिन आने और जाने वाले यात्रियों का तांता लगा हुआ था। कुछ अपने बिस्तरे बांध रहे थे और कुछ खोल रहे थे। विचित्र बोलियां, विचित्र वेश-भूषा।

श्रीकान्त ने सब कुछ एक दृष्टि में देखा और इस चहल-पहल और विचित्रता से भरे अपने सामने के संसार को देखकर वह मुस्कराया। उसने भी बिजली के पंखे के नीचे अपना 'होल्ड-आल' खोलकर बिस्तर लगाया और बैठ गया। उसे लगा कि उसके पास जीवन बह रहा है और वह भी उस क्रम का अङ्ग बना हुआ है। तभी पास में बिस्तर पर सोता

यात्री चिहुंका—एक क्षण के लिए वह उठकर बैठ गया और फिर अपने बिस्तर पर लेट गया। उससे थोड़ी दूर पर दो बूढ़ी स्त्रियां बैठी थीं—उम्र के बोझ से झुकी हुई, जीवन के प्रति अनाकर्षक, किसी हद तक वीभत्स ! दोनों के चेहरे पर झुर्रियां थी और चेहरे की त्वचा, बारिश में पानी की धारा के प्रवाह से बने हुए नदी-तट के भूमि-भाग-सी हो चुकी थी—कटी छटी कुरूप। एक स्त्री के हाथ में नारियल था और वह उससे लम्बा शायद अपनी शक्ति से अधिक कश खींचना चाहती थी। इसी प्रयास में खांसी के कारण वह बेहाल थी ! कुछ पंजाबी सपत्नीक आए; शोर-गुल मचा, जगह के लिए हुज्जत हुई। ऐसा लगा, मानो एक गति से नदी के बहते पानी को किसी ने मोटी लकड़ी से हिला दिया हो और लहरों का क्रम टूट गया हो।

श्रीकान्त अपने बिस्तर पर बैठा हुआ था और बड़े मनोयोग से आस-पास होने वाली निरर्थक हलचलों की ओर देख रहा था—उन हलचलों की ओर जिनका न कोई धरातल रहा है, न रहेगा। एक खीझ, एक अरुचि एक भारीपन ! उसने अंगड़ाई ली—तृप्ति की अंगड़ाई—निवृत्ति की अंगड़ाई ! वह अपने मन को स्वस्थ बनाए रखने के लिए लेट और अपदार्थ सा कुछ क्षणों तक कुण्डली बाँधे पड़ा रहा। लेकिन उसके मन को राहत न मिली। तेज़ी से उसने फिर आंखें खोल दीं। इस बार उसने ज़मीन की ओर न देखकर दीवारों की ओर देखा—विज्ञापनों के सुन्दर पोस्टर ! उसने एक-एक हरेक पोस्टर पढ़ा और विज्ञापन के इस युग की सराहना मन ही मन की जिसमें मिट्टी भी सोने के मूल्य विज्ञापन के बल पर बिकती है। 'रायको और अहमदाबाद मिल्स के पोस्टरों पर अङ्कित नारी के चित्र की उसने आलोचना की—कुछ और सुन्दर उन्हें बनाने के विचार उसके अन्दर उठे।

इसी समय पूर्व की ओर का एक मध्यम श्रेणी का परिवार आया। अधेड़ स्त्री, अधेड़ पुरुष छोटे-छोटे दो बच्चे! स्त्री ने बच्चों को सुलाने की व्यवस्था की और फिर स्त्री-पुरुष भी लेट गए। थोड़ी देर गपशप और निद्रा-निमग्न! अपने आसपास के वातावरण में विचित्रता के अत्यधिक समावेश के साथ-साथ श्रीकान्त की नींद हवा के रुख में तैरते बादलों-सी उड़ी चली जा रही थी और व्यापक जागरूकता उसके अंगों में भरती जा रही थी। इस जागरूकता के साथ-साथ ही उसके अन्दर की आलोचनात्मक प्रवृत्ति भी बल पा रही थी—उसे इर्द-गिर्द की परिस्थितियों से प्रेरणा मिल रही थी। तभी एक युवती आई—तेज़—जैसे विद्युत-रेखा क्षितिज की एक दिशा में चमके और कौंधकर दूसरी दिशा में विलीन हो जाए। एक मिनट उसने असीम सागर की लहरों से टेढ़े-मेढ़े पड़े इन्सानों को देखा और दूसरे क्षण उसने अपने कुली को आवाज दी—इस जगह हमारा बिस्तरा नहीं लगेगा। लेडीज़ का कमरा खुलवाओ।'

बोझ से लदे कुली ने कहा—'मेम साहब, रात को कमरा नहीं खुलेगा। नवयुवती ने तुनककर कहा—'ऊँह, क्यों नहीं खुलेगा?'

और थोड़ी देर बाद वह एक कर्मचारी को लेकर आई; कमरा खुलवाया और अन्दर चली गई। श्रीकान्त की नज़र तभी एक बंगाली परिवार की ओर गई। एक वृद्ध, एक स्वस्थ नवयुवक और एक सुन्दर नवयुवती। उनके पास चमड़े की दो छोटी-छोटी अटेचियां थीं और एक बिछाने का कपड़ा। नवयुवक ने युवती की सहायता से कपड़ा बिछाया; वृद्ध के लिए तकिए के रूप में एक अटेची रख दी और एक अपने लिए। वृद्ध कुछ देर धूम्रपान करते रहे और फिर अटेची पर सिर रखकर सो गए। नवयुवक अपनी जगह से उठा और युवती से सटकर बैठ गया। युवती ने युवक के लिए जगह बना दी और दोनों बातचीत करने लगे।

श्रीकान्त ने उस युवक की ओर सतृष्ण देखा। उसने देखा कि पूर्ण यौवन, अमित सौन्दर्य और उच्छृङ्खल फेनिल-सा उच्छ्वास अपनी गहरी गरिमा और तीखे रङ्गों के साथ उसके सामने है। युवती ने अत्यन्त मधुर स्वर में तभी कुछ कहा और ऐवज़ में युवक ने आह्लाद भरी दृष्टि से उसे देखा। युवती ने मुस्कराते हुए कुछ कहा। दोनों हँस पड़े, जैसे कहीं की अनायास बादशाहत पाकर वे निहाल हो गये हों। फिर प्रेमालाप, फिर मुस्कराहट और फिर मुक्त अट्टहास !

श्रीकान्त ने यह सब देखा और एक मृगतृष्णा उसके मन और आंखों में अपना भाव अङ्कित कर गई। श्रीकान्त जो कुछ अपने सामने देख रहा था, उससे अधिक उसकी विचार-शक्ति उसे विगत की ओर खींचे ले जा रही थी, जहां उसके लिए एक मनोहर कल्पना थी—एक हृदयस्पर्शी जीवन-गाथा थी। उसने फिर उस युगल की ओर देखा—स्वस्थ सुन्दर युवक, सौन्दर्य-प्रतिमा नवयुवती। और उसके अन्दर एक उत्तेजना का आविर्भाव हुआ। उसने कुरूपता, विषमता और जीवन-संघर्ष से भरे हुए अपने 'वर्तमान' पर सोचा और अपने से घृणा करने वाले विचार, धुनी हुई रुई के रेशों से उसके अन्दर एकत्र होने लगे। एक विचार उठा—भला, यह भी कोई ज़िन्दगी है, जिसमें सांस लेने भर के लिए गुञ्जाइश नहीं—जहां केवल संघर्ष है और संघर्ष करते-करते थक जाने पर मौत है। आत्म-चिन्तन के उन क्षणों में उसे लगा, भावना उसके लिए सम्भव नहीं है। कल्पना के आधार पर ज़िन्दगी को कुशल नाविक की तरह इस संसार-सागर में खे ले जाना कहां सम्भव है ? लेकिन जो कुछ वह अपने सामने देख रहा है, उसमें तो मुक्त अट्टहास है, कल्पना और भावना है, ज़िन्दगी के प्रति आकर्षण है और तमन्ना भी है।

श्रीकान्त सोच रहा था—यह सुख, आह्लाद और यौवन के स्पर्श से विकम्पित जीवन ! उसकी शिराएँ एक बारगी कांप उठीं। युगल हँस रहा

था। युवक की आंखों में वासना थी—एक प्यास थी, और युवती वंशी-नाद पर नर्त्तन करती गोपियों-सी मोहक दृष्टि से युवक की ओर देख रही थी। श्रीकान्त ने एकाएक दोनों हाथों से अपनी दोनों आंखें ढक लीं। वह अपने से कह रहा था—'यह वासना और यह तृष्णा सब व्यर्थ है, प्रवंचना है। सत्य वह है, जो कि जीवन है और सामने है।' दोनों आंखें बन्द किए वह अपने से याचना कर रहा था—'मैं निवृत्ति चाहता हूँ मैं मुक्ति चाहता हूँ।' लेकिन वह अपनी आंखें अधिक समय तक बन्द न रख सका! उसके सारे प्रयास उसकी शक्ति की अवहेलना कर उसका उपहास कर गए। उसने विवश और पराजित होकर आंखें खोल दीं।

श्रीकान्त जो कुछ आज है, उसे पूर्ण सत्य नहीं माना जा सकता। आज का श्रीकान्त समाज और व्यक्ति के लिए विगलित है—एक घृणा है, एक संक्रामक रोग है। श्रीकान्त ने अनुभव किया है कि दुनियां की दृष्टि में गए आठ वर्षों में बहुत कुछ खोया है—यहां तक कि श्रीकान्त के 'व्यक्ति' के रहते हुए भी दुनियां उसे अस्तित्वहीन मान चुकी है। उसका भरसक अपमान किया गया है और उसके जीवन-मार्ग को अत्यन्त सँकरा बना दिया गया है। श्रीकान्त इन विषम, कटुतर परिस्थितियों को देखकर मुस्कराता रहा है और नीचे और नीचे गिरता चला गया है। आज तो श्रीकान्त अस्थि-पंजर का ढांचा मात्र रह गया है। उसकी आकृति विकृत हो गई है और वेशभूषा भी, हद दर्जे की अपने तईं लापरवाही के कारण विचित्र हो गई है। लेकिन आज इस पूर्ण यौवन-सम्पन्न युगल को देखकर श्रीकान्त का मरीज़ 'व्यक्ति' कराह उठा है। उसकी कुचली हुई भावनाएँ तड़प उठी हैं और अरमान फिर एक कल्पना के आधार पर विकसित होने लगे हैं।

श्रीकान्त फिर लेट गया। लेकिन लेटने के साथ ही उसके विचार विगत की ओर दूने वेग से दौड़ चले। उसके सामने आठ वर्ष पूर्व का श्रीकान्त आ गया—स्वस्थ, हँसमुख, अपने में मस्त, सुन्दर, आकर्षक! वह सोचता गया—मैं क्या था और क्या हो गया? जैसे कलवाला विगत एक सत्य था और आज का यथार्थ एक भयानक सपना है। उसकी आंखों के सामने तभी एक सुन्दर नारी की आकृति आ गई। मादक आंखें, नव-विकसित कलिका की पंखुड़ियों से पतले ओठ, धुँधले बालों की लम्बी वेणी, आनन पर छितराए हुए बाल। एक आकर्षण एक सम्मोहन शक्ति! यह बेला थी, जो श्रीकान्त के जीवन में एक मादकता लेकर आई और यौवन के प्रथम प्रहर में ही विध्वंस का, पतन का और अभिशप्त जीवन का सन्देश छोड़ उन्हें हसरत-भरी निगाहों से देखती थी और वे दोनों गई। बेला और श्रीकान्त, श्रीकान्त और बेला—दो शरीर होते हुए भी एक आत्मा माने जाते थे। दुनियां उन दृष्टियों पर मुस्कराते हुए निकल जाते थे। बेला ने एक दिन श्रीकान्त से मुस्कराते हुए कहा —'श्री तुम मेरा जीवन हो।'

श्रीकान्त ने सस्मित कहा था —'हम दोनों का मिलन ही जीवन है। और ऐसे ही एक दिन श्रीकान्त ने बेला के हाथों को अपने हाथों में लेते हुए कहा था—'बेला, तुम मेरी कविता हो।' और बेला ने अपना सिर श्रीकान्त के चौड़े वक्ष पर टेकते हुए कहा था—'श्री तुम मेरी कल्पना और भावना हो। चाहती हूँ इसी तरह तुम्हारे युवक-हृदय का सहारा लिए अपना जीवन व्यतीत कर दूँ।'

उन क्षणों में श्रीकान्त ने सोचा था, जीवन की सार्थकता यही है शाश्वत और सत्य है! लेकिन उसके बाद ही उसने मिस बेला का दूसरा रूप भी देखा था। सन् उन्नीस सौ बयालीस की हल चल में कालेज के विद्यार्थियों के साथ तोड़-फोड़ करने के सिलसिले में उसे

भी दो साल की सज़ा हुई थी। वह मुस्कराता हुआ, स्वप्नों का संसार लिए जेल चला गया था। उसे विश्वास था कि जिस समय वह जेल से छूटेगा, उसकी बेला जेल के दरवाज़े पर ही फूल-माला से उसका स्वागत करेगी। उसके साहस से बेला को कितना सन्तोष मिलेगा; फिर विवाह, एक छोटा-सा संसार और बालक की तोतली बोली से हरा-भरा पारिवारिक उपवन !

लेकिन जिस समय श्रीकान्त जेल से छूटकर मिस बेला के बँगले पर पहुंचा, उसका सारा विश्वास, सारी कल्पनाएँ और सुन्दर स्वप्न सभी कुछ तिरोहित हो गए। मिस बेला ने कहा—'श्रीकान्त, कितना अच्छा होता, अगर तुम जेल न जाते।'

श्रीकान्त ने एक बार ग़ौर से बेला की तरफ़ देखा। बेला ने बिना उसकी ओर देखे ही कहा—'तुम समझते हो, विध्वंसक कार्यों द्वारा तुमने बड़ी देश-भक्ति का परिचय दिया है।,

'बेला, मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा।'

बेला ने दृढ़ स्वर में कहा—'मिस्टर श्रीकान्त, यह एक जज का बंगला है और यहां चोर-लुटेरों के आने की ज़रूरत नहीं है। आशा है, आप अब कभी इधर न आएंगे। हमारा भी समाज है और उस समाज में निभकर ही हमें ज़िन्दा रहना है।'

श्रीकान्त ने विस्फारित नेत्रों से बेला की ओर देखा। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि यही वह बेला है, जो प्रेम की देवी बन, उसके विश्वास-जगत् की रानी बनी हुई थी। लेकिन वह बोला कुछ नहीं। बेला ने फिर कहा—'आप सज़ा भुगत कर आए हैं—पूरे दो सालों की मिस्टर श्रीकान्त ! और सज़ायाफ्ता लोगों के लिए जगह या तो शराबखाना हो सकती है या फिर जुआ आदि का स्थान।'

श्रीकान्त क्रोध से कांप उठा था। उसने ज़ोर से चीख कर कहा था—'चुप रहो ! तुम क्या समझो मिस बेला, स्वाधीनता और स्वाधीनता के लिए कुर्बानी क्या चीज़ होती है। तुम मोम की रङ्ग-बिरङ्गी पुतलियों के पास वासना और तड़क-भड़क के सिवा और है ही क्या ? मैं जा रहा हूँ और जीवन में एक नया अनुभव लेकर जा रहा हूँ।' और श्रीकान्त चला आया था।

अब इस बात को पूरे पांच वर्ष का लम्बा अर्सा हो गया। बेला के पास से श्रीकान्त चला तो आया था, लेकिन वह बेला को भूल न सका। वह एक वेदना महसूस करता रहा। उसने बेला को भुलाने के लिए शराब पी, लेकिन बेला उसकी कल्पना से दूर नहीं हुई। तब उसने अपने अस्तित्व को मिटाने के दूसरे अवांछनीय कार्य किए, वह कलकत्ते की सोनागछी, रामबाग; दिल्ली के काठ बाजार, कानपुर के मूलगंज आदि बाज़ारों में भटकता फिरा। लेकिन बेला का स्मरण फिर भी उससे दूर न हुआ। और आज तो श्रीकान्त आध-आध इन्च गढ़े में घुसी अपनी आंखों, हड्डियों के मांसरहित ढांचे और निर्बल शरीर को लिए मौत के निकट पहुंच गया है।

... ...

श्रीकान्त ने उठकर देखा, नवयुवक और नवयुवती लेट गए हैं और उनकी बातचीत अब भी चल रही है। उस समय श्रीकान्त का उस जगह और अधिक ठहरना असम्भव हो गया। जागरूक वासना और सचेत कल्पना के कारण उसका विदग्ध हृदय अंगारों-सा दहक रहा था। उसने कुली बुलवाकर बिस्तरा बँधवाया और अविलम्ब उस इण्टर क्लास वेटिंग-रूम से बाहर निकल गया।

प्रभाती

दिन भरकी कठिन उमस और धूप के बाद शाम को कुछ बादल आकाश पर छा गये थे। लू बन्द हो गयी थी और ठंडी ब्यार बहने लगी थी। गंदे गली कूचों में रहने वालों की कौन कहे बंगलों में रहने वाले भी दिन भरकी लू और तपिश के बाद कुछ ठंडक मिलने की इच्छा से लॉन और छतों पर टहलने के लिये निकल आये थे। बादल घने होते जाते थे और हवा में ठंडक आती जा रही थी लेकिन पानी नहीं बरस रहा था। प्रभाती ने पीठ पर बरगद की जटाओं से छितराये बालों में कंघा फेरा, ज़रा-सी स्नो हथेली पर लेकर चेहरे पर लगाई और देर तक शीशे के सामने खड़ी हथेली से अपने गालों को रगड़ती रही। इसके बाद उसने हल्का-सा लिपस्टिकका अपने अधरों पर प्रयोग किया और किसी विरह गीत की पंक्ति गुनगुनाने लगी। गुनगुनाते-गुनगुनाते वह अपने बिस्तरे के पास पहुंची और तकिये के नीचे से सुरमादानी निकालकर आदम-कद शीशे के सामने आई और उसने सुरमादानी से सलाई निकालकर अपनी बड़ी-बड़ी मादक आंखों के कोयों पर फेर दी, फिर एक टकसे शीशे के सामने देखती रही। जिस साड़ी को इस समय प्रभाती

पहने हुई थी वह उसे जची नहीं, एक अल्मारी के सामने गई और काली ग्राउन्ड पर झिलमिलाते सलमा सितारे की साड़ी निकाल लाई। उसने एक पल्लड़ उसका खोलकर अपने बदन पर रखा और खिल गई प्रभाती गुनगुनाती रही और अपनी वेश भूषा अपनी इच्छा-नुसार बनाती रही। जब उसने सन्दूकची में से निकाल कर बड़े-बड़े आबदार सच्चे मोतियों का नेकलेस, हीरे की चूड़िया, डायमेण्ड लटकने इयररिंग और फीरोज़े की अंगूठी पहन ली तो फिर वह एक बार शीशे के सामने जाने और अपनी रूप-राशि और इस साज़ संवार को परखने का लोभ संवरण न कर सकी। जिस समय वह शीशे के पास जाकर खड़ी हुई अपने 'परिवर्तन' पर उसे विस्मय हो रहा था, वह बड़ी देर तक मन्त्र-मुग्ध-सी शीशे के सामने खड़ी रही। फिर कमरे के पंखे का स्विच आफ कर बाहर निकल आई।

प्रभाती कमरे से निकलकर बंगले से लगे हुए बाग में चली गई और हरे, पानी दिये लॉन पर टहलती रही। सन्ध्या का मटमैला आवरण आकाश पर फैल गया था, जिसके कारण सूर्य की रोशनी धुंधली पड़ गई थी। लेकिन आकाश में बादलों के टुकड़ों के कारण हवा वैसी ही ठण्डी बह रही थी—प्रभाती अपने कपड़ों में से निकलती सुगन्धि में तन्मय लौनके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक टहलती रही। सहसा प्रभाती की यह तन्मयता, पास में मालिन के बच्चे के रोने की आवाज़ से टूट गई। मालिन अपनी धोती का कछोटा बांधे बड़े-बड़े पेंजने खनन... खनन करती बच्चे को वहां से चिपकाये चली जा रही थी कि लौन पर मालकिन को टहलता देखकर ठिठक गई और बच्चे को चुप करने का असफल उपक्रम करने लगी। लेकिन बच्चे ने, जो एक बार रोना आरम्भ किया वह माँ के उन थोड़े से क्षणों में लाख प्रयत्न करने पर भी

बन्द नहीं हुआ अपनी असफलता मे खीज कर मां ने उसे स्तन से लगा लिया। पहले तो ऐसा लगा जैसे बच्चा शान्त हो गया है किन्तु वह एक बार मुबका और फिर दूने बेग से चीख मारता हुआ रो पड़ा। प्रभाती विचलित हो उठी। उसने चिल्लाकर कहा—

'क्या है सोना, क्यों बच्चों को रुला रही है ?

मालिन ने बच्चे के रोने से चिढ़कर कहा—

'क्या कहूँ मिस साहब तबसे चुपा रही हूँ लेकिन चुप होता ही नहीं है बराबर रोता ही चला जा रहा है।

प्रभाती ने तब मातृत्व से प्रेरित होकर कहा—

'अरे तुझे बचा रखना भी आता है या यूं ही चुपेगा। ला...ला मुझे दे देख कैसे नहीं चुपता।'

सोना अबतक प्रभाती के नज़दीक आचुकी थी। उसने एक बार प्रभाती की बढ़िया काली सिल्ककी साड़ी को तरफ देखा और फिर अपने बच्चे के मैले कुचले कपड़ों की ओर और वह साहस करने पर भी अपने बच्चे को अङ्क में लेने के लिए हाथ फैलाये प्रभाती की ओर न बढ़ा सकी। प्रभाती ने उसकी इस हिचकिचाहट पर—इस छोटे और बड़े के वर्गी कारण से उत्पन्न हुई भावनापर गौर नहीं किया—मातृ प्रेम की प्रबल अनुभूति से प्रेरित हो उसने सोना के हाथों से बच्चा ले लिया और उसे हाथों झुलाती हुई लौन पर टहलने लगी। पहले तो बच्चा मचला लेकिन प्रभाती के उसे गला लेने और मधुर लयने किसी गीत के गुनगुना ना आरम्भ कर देने से बच्चा चुप हो गया। प्रभाती ने तब सोना से उलाहने भरे स्वर में कहा—

'अरी तुझे बचा रखना भी आता है कि बस...नहीं तू बचे को बड़ी तकलीफ़ देती है। घन्टे भर से बचे का रोना सुन रही हूँ। लेकिन बचा है कि रोता है तो रोता ही चला जा रहा है।

बच्चे ने प्रभाती की गोद में असुविधा अनुभव की कि पानी के बबूले सा कुलबुलाने लगा। प्रभाती ने उसे अ...आ आका राग सुनाते हुए फिर झुलाना शुरू कर दिया तो बच्चा शांत हो गया। सोना ने सोचा मिस साहब को तकलीफ़ हो रही है, तो सकुचा कर बोली—

'आपको तकलीफ़ होती होगी मिस साहब लाइए बच्चा में ले लूं।'

लेकिन प्रभाती के सामने उस समय अपनावैभव नहीं था—अपना यथार्थ नहीं था। इस भावना से वह दूर थी कि सामने खड़ी सोना सिर्फ़ उसकी मामूली नौकरानी है और जिस धूल भरे बच्चे को उसने अपनी गोद में ले रखा है वह उसकी नौकरानी है, जिससे उसका कहीं भी सामजस्य नहीं है—कहीं भी स्तर बराबर नहीं है। उसने तुनक कर कहा—

'हूं' तुझे बच्चा फिर से रुलाने के लिये दे दूं। नहीं देती बाबा नहीं देती और उसने फिर ममत्व से अनुप्राणित हो बच्चे को अपने वक्ष से चिपका लिया। सोना का संकोच इस अपनत्व से बढ़ता जा रहा था और वह जैसे उसकी गरिमा में डूबती जा रही थी। लेकिन मालकिन के आग्रह के आगे अब क्या कहे? वह टुकुर-टुकुर प्रभाती की ओर और उसकी गोद में किलकारी मारते बच्चे की ओर देखती रही। प्रभाती तुतला-तुतला कर बच्चे से बात चीत कर उसे रिझा रही थी और मोद से भरती चली जा रही थी।

रात हो गई थी, बादल कुछ और अधिक घने हो गये थे लेकिन जेठ की तेरहवीं का चाँद क्षितिज के एक कोने से समतल मैदान में शिलाखण्ड सा सिर ऊंचा किये उठ आया था। बाग में लगे लेम्प पोस्ट जगमगा उठे थे और प्रभाती वैसी ही बच्चे को दुलार, करती लौन पर 'मार्च' कर रही थी। प्रभाती टहल रही थी और सोच रही थी—

कहने को सोना ग़रीब है। इन लोगों का हमारे सरीका ऊंचा परिवार और समाज भी नहीं है। इस महगाई में शायद दो जून भर पेट भोजन भी इन्हें न मिलता हो लेकिन इस आर्थिक और सामाजिक बावजूद भी पारिवारिक—जीवन कितना सम्पन्न है—कितनी तृप्ति है इनके दम्पति जीवन में! इनके जीवन को देख कर लगता है जैसे अपूर्णता इनके जीवन रसमें विष नहीं घोल पाती—इनके जीवन को कष्टमय नहीं बना पाती। वैषम्य आगे बढ़ कर इनके जीवन की गति को विपथगामी नही बना पाता। लगता है अनेकानेक कठोर यातनाएं—अनेकानेक कठिन परिस्थितियां पारिवारिक जीवन के 'सम' पर आ, एक लय हो थिरक उठती हैं। कितना भरा पूरा परिवार है—कैसा सलौना पति है, गंवारिन है तो क्या लेकिन कैसी सुघड़ है यह! और यह बच्चा, इन दोनों के प्रेम का सच्चा प्रतीक है।,

प्रभाती रुकी, देखा कि बच्चा आराम से उसकी गोद में सो गया है। और अब न उसे मां की परवाह है और न किसी और की! तब उसने आहिस्ते से बच्चा उसकी गोद में सौंप दिया। सोना बच्चा लेकर चली गई। लेकिन प्रभाती वहीं उसी लांन पर टहलती रही। वह सोच रही थी—

'किसे सुख कहा जाये? मेरे पास पैसा है—सम्मान है—अनेक सुविधाएँ हैं—पति है, सभी कुछ तो है। लेकिन क्या मैं खुश हूँ क्या इसी जीवन को सुखी-जीवन कहा जा सकता है?'

फिर अपने ही आप एक विद्रूप हँसी हँसी। हँसते हँसते वह सिसक पड़ी जैसे अन्तःकरण की असीम वेदना किसी व्याघात से ठोकर खा मिट्टी के घड़े में भरे पानी-सी-फूटकर वह निकली हो। सोचा—

आज तो पति नाम की संज्ञा से मेरे अस्तित्व का निकट सम्बन्ध है! लेकिन उस नाम की 'महानाम' पुनीत कल्पना में, मैं कभी अपने को

समन्वित कर पायी हूँ—जीवन के गत सात वर्षों में एक दिन के लिए भी कभी ऐसा हुआ है कि 'प्राण' समझकर अपनी स्वांसों की धड़कन को उनकी स्वांसों से स्पर्श कर सकी होऊँ। हरेक क्षण लगा है कि दुख है—आभास मिला है कि विपर्य है। और आज तक इसी दुखः की कटु कल्पना में घुलती रही हूं।

प्रभाती लान पर पड़ी बैंच पर बैठ गई। वह अपने अतीत को उस अन्धे की गिरी हुई इकन्नी की तरह खोज रही थी, जो किसी बेसुध चलते राहगीर से ठोकर खाकर गिर पड़ी हो—

'अरे रामरे कैसी सुखद कल्पनाएं थीं—कितने सुनहले स्वप्न थे। आज की मौजूदा परिस्थियों में तो लगता है किसी सुखान्त नाटक का अत्यन्य मोहक दृश्य हो रहा हो जिसका पटाक्षेप हो गया। लेकिन उन दिनों कभी भी यह सोचा था कि जो तब एक वास्तविकता थी वह एक अतीत की कल्पना बनकर रह जायगी। आज जिसे मन का विभ्रम कहूं कल वह एक सत्य भी रहा है—आज जिसे मन की चंचलता और यौवन की बेसुध उमङ्ग—एक प्रवञ्चनामात्र कह दूँ लेकिन कल उसका भी अस्तित्व रहा है। कैसी भाग्य की विडम्बना है—कैसा अपनी भावनाओं का—अपनी इच्छाओं का मखौल है।'

प्रभाती फिर उस जन शून्य बाग में हँसी। जैसे चाह रही हो—चलो हटाओ एक खेल था, जिसका अन्त हुआ,। अब पीछे क्या, आगे बढ़ो। लेकिन प्रभाती तो पीछे ही उलझती गई—

'अजीत को वह चाहती रही है। आज भी उसके हृदय में अजीत के लिए वही स्नेह स्नग्ध स्थान है, जिस पर एक बार उसने उसे न्योछा-वर किया था। लेकिन परम्परागत् पारिवारिक—जीवन के जिस सूत्र में

कसकर बांध दिया गया है, उसमें इस अजीत बेचारे के लिए कहा स्थान है—कहां उसके अरमान की प्रतीक्षा है।'

प्रभाती के सामने लेम्पपोस्ट से बहती रोशनी टेढ़ी पड़ गई—प्रकाश रश्मियां उसकी आंखों के सामनें धनुषाकार ग्रहण कर गईं। उसकी आंखों में, हरी-हरी दुर्वा-दल पर चिलकते पानी की बूंद से ही अश्रु-कण आंखों के कोयों पर आ लगे थे। उसने अपने हृदय की सारी वेदना को पूँजीभूत कर धीरे से कहा—

'अजीत तुम कहा हो, कैसे हो मैं कुछ भी तो नहीं जानती। तुम्हारी राष्ट्रीय भावनाओं को मैं निरा पागलपन समझती रही हूँ और आज भी उसे उससे अधिक महत्व नहीं देती। जो भावना प्रबल होकर ममत्व का विनाश कर दे—जो स्नेह-रज्जु को काट दे, उसे प्रमाद न कहा जाये तो और क्या कहा जाए?' प्रभाती; वेदना में डुबकी ले फिर स्थल पर आ लगी—

'लेकिन तुम्हें मेरी क्या चिन्ता, मैं मरी तो मर गई। तुम्हें भी मुबारिक हो तुम्हारा स्वदेश......विदेशियों का जननी जन्म भूमि से खदेड़ देने की रट और महात्मा गांधी की जय! अरे भाई मैं इतनी सबल कहां कि आगे बढ़कर तुम्हारा हाथ पकड़ लेती और कहती—'तो चलो; जिधर तुम चलते हो उधर ही चलो। देखो मैं तुम्हारा साथ देती हूं कि नहीं। लेकिन इतना तुम सच मानो अजीत, अगर एक बार तुमने अपना हाथ बढ़ाकर मुझे अपने मनवांछित मार्ग पर ही लगा दिया होता, तो मैं पीछे नहीं हो गई होती, प्रभाती सोचती गई—

'वह अन्धेरी भयानक रात! पानी मूसलाधार बरस रहा था। और मैं तुम्हारे दिए समय पर मैं प्रतीक्षा कर रही थी कि घबराए हुए तुमने पीछे से आकर क्या कहा था? प्रभाती जैसे अपने से प्रश्न कर पूछने लगी—

क्या कहा था ! यही न—

'प्रभाती मैं जा रहा हूँ। कहा मोर्चे पर जा रहा हूँ। मेरा कर्तव्य मुझे पुकार रहा है—जननी जन्मभूमि का दारुण क्रन्दन मुझे मर मिटने के लिए चुनौती दे रहा है। प्रभाती, यह एक महान चुनौती है—यह एक पावन कर्तव्य है जिसकी मैं अवहेलना नहीं कर सकता। और इसीलिए मैं तुमसे यह कहने आया कि अपने अक्षय प्रेम को अब अपने में समेट लो—मैं उसके योग्य नहीं हूं। प्रभाती, तुम मुझे मुआफ़ कर देना...हां ...हां हमेशा के लिए भुला देना—भुला देना होगा। वैसे जीवन में गति कैसे रहेगी ? तुम मेरी प्रतीक्षा न करना और इस चिर प्रतीक्षा में अब सार भी कहां है ? सब कुछ अब कुछ नहीं।' प्रभाती बुदबुदाई—'सब कुछ अब कुछ नहीं।' और बहते जी से वह सोच रही थी—

'अगर सब कुछ अब कुछ नहीं है तो न रहे-सब कुछ जहन्नुम में जायं ! मैं तो अब निर्जीव मशीन हूँ कि चल रही हूँ।'

लेकिन प्रभाती यह कह कर भी सान्त्वना न पा सकी। उसके सामने सोना का छोटा-सा खुशी से किलकारी मारता बच्चा और उसका सलौना सा पति आ गया वह फिर अन जाने ही अपने विगत से टकरा गई—

'कभी उसने भी ऐसे ही सुखद् परिवार की रूप-रेख अपने भविष्य के केन्वास पर खेंची थी। उसने भी सोचा था कि उसका छोटा-सा परिवार होगा-अजित और वह उसके मालिक होंगे-नन्हा सा बच्चा उनके बीच जब किलक उठेगा, तो वे जीवन की सार्थकता पा जायेंगे। लेकिन चित्र बनने के पूर्व ही रूप-रेख मिट गई। जीवन का एक नया नक्शा उसके सामने आया और उसे विवश होकर अपनी कल्पनाएं उसमें सिक्त कर देनी पड़ी थी अपने विगत और वर्तमान को उस आने वाले भविष्य की कटुता में डुबा देनी पड़ी थी लेकिन आत्म-चिन्तन के चंद क्षणों में वह

किस प्रकार इस बातको मानले कि वह अपने विगत और वर्तमान को सदैव के लिये उस भविष्य में डुबा पाई थी। मां ने जब एक दिन अत्यन्त करुणा से प्रभाती के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा था—

'बेटी, कब तक अजीत के नाम पर बैठी रहेगी। आखिर लोक-लाज भी तो कुछ है।'

तो प्रभाती ने अपनी मां की वेदना में हाथ बंटाते हुए कहा था—

'मां तो तुम क्या चाहती हो ?

मां ने एक बार आशा से, दुलार से पली इस हठिन लड़की की तरफ़ देखा—

अरे आज यदि अजित सामने होता तो क्या कभी मैं तेरे मनकी बात टालती। लेकिन कुछ कहते हैं उसे पुलिस ने गोली से उड़ा दिया कुछ कहते हैं उसे आजन्म काले पानी की सज़ा देदी गई। और उसे सरकार ने चुपके से समन्दर पार कर दिया है। अब तू ही बता प्रभाती मैं क्या करूं ?

कहते-कहते प्रभाती की मां का गला रूँध गया था। तब प्रभाती ने अतिशय अपनत्व प्रगट करते हुए दृढ़ स्वर में कहा था—

मां मुझसे तेरी यह असीम वेदना नहीं देखी जाती। जब जो नहीं है तो उसका प्रश्न ही क्या ? लेकिन यह जीवन तो निरापद् शून्य रहकर एक दिन भी नहीं चल सकता। इसे तो स्पन्दन चाहिये—गति चाहिये। अरी मेरी मय्या मैंने कहा न जो कुछ तू मुझ अपदार्थ का बनाना चाहे बना। लेकिन तू अपना मन छोटा न कर।' और वह अपनी मां के गले लगकर बिलख-बिलख कर अबोध बच्ची की तरह रोने लगी थी।

प्रभाती सोच रही थी—इसके बाद विवाह हुआ और गृहस्थी की बेड़ी पैर में पड़ गई। अजीत के पाने-एक छोटा-सा परिवार बसाने, और

बच्चे की मन मोदक किलकारी की बात एक कटु विगत बनकर रह गई। सात बरस—महाकाल से लम्बे सात बरस इस जीवन-संघर्ष में बादलों के नीचे छिपे हुए तारों से तिरोहित हो गये। और आज जो वर्तमान है उसमें सांसारिक वैभव माना कि अपरिमित है—इतना बड़ा बंगला है—मोटर है—रेडियो है—जेवर है—रुपया पैसा है और समाज में मान है। लेकिन इन आकर्षणों के नीचे तो भयानक खोखलापन है। जीवन की ऐसी नगण्यता है जिसे देखकर कोमल-मन चिहुंक उठता है। आज जो कुछ सामने है बस वही सत्य और नित्य है इससे आगे कल्पना और भावना के लिये गुंजाइश नहीं है। लेकिन कौन अभागिनी इस संसार में जन्म लेकर बच्चे का मुंह देखना नहीं चाहती—कौन उसकी तोतली बोली सुनना पसन्द नहीं करती—मैं अपने से पूछती हूँ अरे कौन एक बार अपने नन्हें कोमल बच्चे के मुख चुम्बन की आशा नहीं रखती—उस शुभ घड़ी की प्रतीक्षा नहीं करती—

लेकिन मेरे लिये यह सब स्वप्न कल भी रहा है, आज भी है और आनेवाले 'कल में भी रहेगा। मेरा जीवन सिर्फ़ तिल-तिल मिटने के लिये है—निर्माण वहां असम्भव है।'

और फिर दृढ़ता से उसने अपने से कहा—

'मैं सिर्फ़ एक मशीन हूँ और जीवन भर मशीन की तरह ही चलती रहूँगी।'

❀ ❀ ❀ ❀

पासके माली के क्वार्टर में फिर सोना का बच्चा रोने लगा था। प्रभाती अपनी क़ीमती साड़ी से अपने चेहरे पर से ढुलते आंसुओं को पोंछती माली के क्वार्टर की तरफ़ वेग से बढ़ी चली जा रही थी।